गगनाञ्चल

वर्ष 18 अंक 2 1995

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्

प्रकाशक

मीरा शंकर
महानिदेशक
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, नयी दिल्ली

संपादक

कन्हैयालाल नन्दन

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् भारत सरकार के विदेश मंत्रालय के अधीन एक स्वायत्त संगठन है। भारत व अन्य देशों के मध्य सांस्कृतिक संबंधों एवं पारस्परिक सद्भाव को स्थापित तथा संपुष्ट करने के उद्देश्य से 1950 में परिषद् की स्थापना की गयी थी। भारत तथा दूसरे देशों के मध्य इस सांस्कृतिक संवाद के उद्देश्य से आयोजित अपने प्रकाशन कार्यक्रम में परिषद् अन्य गतिविधियों के अतिरिक्त त्रैमासिक पत्रिकाएं भी प्रकाशित करती है जो हिंदी (गगनाञ्चल), अंग्रेजी (इंडियन-होराइजन्स, अफ्रीका क्वार्टरली), अरबी (सक़ाफ़त-उल-हिंद), स्पेनिश (पपेलस-दे-ला-इंडिया) और फ्रेंच (रेकौंत्र अवेकलैंद) भाषाओं में हैं। प्रकाशन सामग्री के लिए संपादक 'गगनाञ्चल' से निम्नलिखित पते पर संपर्क किया जाना चाहिए :

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्,
आजाद भवन, इंद्रप्रस्थ इस्टेट, नयी दिल्ली-110002

शुल्क दरें

एक अंक	*वार्षिक*	*त्रैवार्षिक*
रु 25.00	रु. 100.00	रु. 250.00
US$10.00	US$40.00	US$100.00
£4.00	£16.00	£40.00

ISSN 0971 - 1430

मुद्रक : विमल ऑफसेट, 1/11804, पंचशील गार्डन, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

प्रकाशक की ओर से

गगनाञ्चल के अंकों में विलंब के कारण उपजे अभाव को हमारे पाठकों ने बड़ी आत्मीयता से महसूस किया है। उनकी व्यक्त चिंता ने हमे प्रेरित किया है। पाठकों की हमसे अपेक्षाएं स्वाभाविक हैं। इन्हीं अपेक्षाओं एवं पाठकों की संवेदनाओं को ध्यान मे रखते हुए हम प्रयत्नशील हैं कि *गगनाञ्चल* के अंक अपनी सृजनशील रचनात्मकता के साथ आप तक शीघ्र पहुंचे। इस दायित्व को निभाने के लिए पत्रिका के संपादक कन्हैयालाल नंदन ने पूर्ण सहयोग का विश्वास दिया है।

गगनाञ्चल का नया अंक आपके समक्ष प्रस्तुत है। हमारा प्रयत्न रहता है कि प्रत्येक अंक का संयोजन ऐसा हो जो सुंदर, आकर्षक एवं वैचारिक हो। प्रत्येक क्षण मे नवीनता का भाव जगाने वाला ही तो सुंदर होता है। यही सुंदर साहित्य कला और संस्कृति के सत्य के साथ मिलकर कल्याणकारी होता है। पत्रिका के माध्यम से हम निरंतर इस उद्योग में व्यस्त हैं कि शब्दों का एक ऐसा पुल रच सकें तो देशों की सीमाएं लांघकर एक आत्मीयता के साथ भारत की कला, संस्कृति एवं साहित्य को जोड़ दे। इन क्षेत्रों में जो भी महत्वपूर्ण उपलब्ध है वह *गगनाञ्चल* के पृष्ठों पर शब्द बनकर उतर आए। इसी दृष्टिकोण के तहत, अनेक विचारवान रचनाकारों के सर्जक क्षणों में अभिव्यक्त शब्दों की शृंखला रचनाओं के माध्यम से आपके लिए प्रस्तुत है। जैसी अपेक्षा है, ये शब्द आपको सोचने के लिए बाध्य करेगे और मानवीय मूल्यों को बनाए रखने के लिए प्रेरित करेंगे। दिनकर की डायरी के पृष्ठ पढ़कर आप महसूस करेंगे कि कैसे अतीत के पन्नों में भी हमारा वर्तमान अभिव्यक्त होता है। वर्तमान के अनेक सवाल इतिहास के पृष्ठों पर बिखरे हुए हैं।

हमारे आगामी दोनों अंक भी बहुत महत्वपूर्ण होंगे। आगामी अंक, कला, साहित्य, संस्कृति, संगीत, शिक्षा आदि क्षेत्रों में प्रसिद्ध रचनाकारों के संस्मरण पर आधारित होगा। इसके पश्चात् पांचवे विश्व हिंदी सम्मेलन पर केंद्रित अंक के लिए

हमारा प्रयत्न आपको सार्थक एवं वैचारिक सामग्री देने का होगा। इन अंकों के संयोजन में आपका योगदान भी अपेक्षित है।

गगनाञ्चल को हम आपकी अपेक्षाओं के अनुरूप तैयार करते हैं। यदि कहीं आपको अभाव दिखाई देता है, या इसका आकर्षण आपको बांध लेता है—दोनों ही धरातलों पर हम आपके विचारों से अवगत होना चाहेंगे। यही तो संबल है हमारी निरंतर प्रगति का।

(मीरा शंकर)

महानिदेशक

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्

संपादकीय

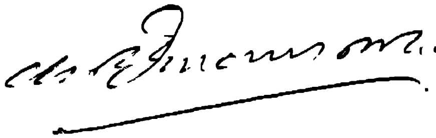
गगनाञ्चल के माध्यम से आप सबसे जुड़ना एक नयी प्रसन्नता का अनुभव दे रहा है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् के अध्यक्ष श्री वसंत साठे की प्रबल इच्छा रही है कि इस पत्रिका द्वारा भारतीय संस्कृति, कला एवं साहित्य की छवि विदेशों तक अपनी माटी की रचनात्मक ऊर्जा के साथ पहुंचे और इस पत्रिका को नये संदर्भों से जोड़कर भारतीय अस्मिता की पहचान को रेखांकित किया जाए। परिषद् के अध्यक्ष की इस इच्छा और अपने संपादकीय दायित्व को मैं आपके सहयोग के साथ जोड़कर देख पाता हूं। आशा करता हूं कि शब्दों के इस विस्तृत अर्थवान् आकाश में रचनात्मकता के सौंदर्यशील सार्थक आकार आपके सामने प्रस्तुत कर पाऊंगा।

अफ्रीका के प्रसिद्ध रचनाकार न्युटी वा थ्योंगो ने अपने लेख में भाषा को लेकर बहुत सार्थक सवाल उठाए हैं। उनका प्रस्तुत निष्कर्ष हमें अनेक स्तरों पर सोचने को बाध्य करता है—"... लेखकों को यह याद रखना चाहिए कि कोई विदेशी कभी भी हमारी भाषा, साहित्य या हमारे थियेटर को विकसित नहीं कर सकता। इसी प्रकार हम भी उधार ली हुई जबान और दूसरे की नकल करके अपने साहित्य और संस्कृति को विकसित नहीं कर सकते।" विदेशी भाषा का इस्तेमाल अवांछनीय नहीं है परंतु अपने अन्तर्मन की अभिव्यक्ति तो अपनी मातृभाषा में ही हो सकती है। जो हम महसूस करते हैं उसे अनुवाद के माध्यम से अभिव्यक्त करते ही वह पराएपन की गंध से युक्त हो जाता है। लगता है जैसे हमारे शब्दों को वह अर्थ नहीं मिल पा रहा है जो हमारी संवेदना, हमारी माटी की गंध से कहीं गहरे जुड़ा होता है। भौतिक शास्त्र, रसायन शास्त्र या अन्य तकनीकी शब्दावलियां शायद शब्दों के इस अपनेपन को न स्वीकार करें परंतु कला, संस्कृति और साहित्य न्युटी वा थ्योंगो की इस बात से असहमत नहीं हो सकते हैं।

जहां एक ओर हमारा यह प्रयत्न है कि भारतीय संस्कृति कला एवं साहित्य की गंध को सागर पार हमारी संवेदनाओं की वाहक धड़कनें महसूस करें, वहां यह

भी आकांक्षा है कि जो विदेशों में हमसे कहीं गहरे जुड़े हैं वे भी अपनी धड़कनों के साथ हम तक पहुंचें। शब्दों के जरिए ही ऐसा माध्यम तैयार किया जा सकता है और *गगनाञ्चल* ऐसा ही माध्यम है। हमें प्रतीक्षा रहेगी आपकी रचनाओं की जिससे सागर अपनी विशालता के बावजूद हमारी समीपता को न रोक सके।

गगनाञ्चल की एक दीर्घ और सुदृढ़ परंपरा है। भवानी प्रसाद मिश्र से आरंभ हुई *गगनाञ्चल* की यह यात्रा अपने भीतर अनेक विशिष्ट नक्षत्रों को समेटे हुए है। पत्रिका के आगामी अंकों में हमारी कोशिश होगी कि विभिन्न भाषाओं के महत्वपूर्ण लेखकों की रचनात्मक अनुभूतियों को हम आप तक पहुंचाएं और आपकी प्रतिक्रियाओं, सुझावों तथा वैचारिक टिप्पणियों से विश्व के समस्त हिंदी जगत को लाभान्वित कर सकें। प्रस्तुत अंक में भारत के राष्ट्रपति डॉ. शंकर दयाल शर्मा, प्रधानमंत्री श्री पी.वी. नरसिंहराव, रामधारी सिंह 'दिनकर' चेक राजदूत ओदोलेन स्मेकल, न्युटी वा· थ्योंगो, नोकोलोई रेरिख, सीताकांत महापात्र, प्रो. विजयेन्द्र स्नातक, अशोक वाजपेयी, महीप सिंह, रमानाथ अवस्थी, उपेन्द्रनाथ अश्क, रामदरश मिश्र आदि महत्वपूर्ण लेखकों की रचनाएं हमारी इसी कोशिश का परिणाम हैं। आशा है *गगनाञ्चल* का आप स्वागत करेंगे और अपनी श्रेष्ठ रचनात्मक शक्ति का सहयोग इसे प्रदान करेंगे।



(कन्हैयालाल नन्दन)
संपादक

अनुक्रम

संस्कृति

लोक कलाओं का संरक्षण	*डॉ. शंकर दयाल शर्मा*	9
जड़ों की ओर लौटना	*न्युटी वा थ्योंगो*	13

अतिथि रचना

मंत्री महोदय	*पी.वी. नरसिंहराव*	26

इतिहास के पन्नों से

तीन व्यक्तित्व : चार मुलाकातें	*रामधारी सिंह 'दिनकर'*	30

चिंतन

हिंदी साहित्य पर गांधीवाद का प्रभाव	*प्रो. विजयेन्द्र स्नातक*	46

कहानियां

ताल	*महीप सिंह*	59
एकलव्य का अंगूठा (तेलुगु कहानी)	*डॉ. परिमला सोमेश्वर*	68
अब न नसैहो	*ऋता शुक्ल*	75

कविताएं

यदि कभी कविता लिखना खत्म हो जाता	*सीताकांत महापात्र*	93
एक हरी बिल्ली उसी सूखी शाख पर	*अशोक वाजपेयी*	96
ओ गंगा की धार	*ओदोलेन स्मेकल*	98
चाबियों की रखवाली	*निकोलाई रेरिख*	100
हमारा समय		

वे दिन	*रमानाथ अवस्थी*	103
करूं क्या		
बेबीलोन के खंडहरों में	*जगदीश चतुर्वेदी*	105
जिंदगी के अंतिम वर्षों में	*उपेंद्रनाथ अश्क*	109
तीन कविताएं	*डॉ. रामदरश मिश्र*	113
अक्सर मन करता है	*सुषान्त सुप्रिय*	118

सागर पार से

वह अनजान आप्रवासी	*अभिमन्यु अनत*	120
सागर और नाव	*दिविक रमेश*	122
कभी तुम गुनगुनाओ	*मोहन राणा*	124

यात्रा संस्मरण

कैरेबियन के द्वीप में राष्ट्रपति	*डॉ. विजय अग्रवाल*	127

स्मरण

मुसाफिर मित्र को अंतिम प्रणाम!	*कन्हैयालाल नन्दन*	134
हरिशंकर परसाई से यादगार मुलाकात	*घनश्याम जौली*	137

आलोचना

कन्नड़ लोक साहित्य के अग्रणी समाहर्त्ता नाडी केरिआंडा चिनप्पा	*डॉ. वीरेंद्र शर्मा*	143
गहरे अर्न्तसंघर्षों के असाधारण कवि : श्रीकांत वर्मा	*जोगेंद्र सिंह*	146

समीक्षा

संवेदनशील कवि-हृदय की कहानियां	*प्रेम जनमेजय*	151
सामाजिक क्रांति के जनक : महात्मा जोतिबा फुले	*राधेश्याम तिवारी*	154
हिंदी सिनेमा पर सार्थक चिंतन	*अजय गिरि*	157
'उसकी जमीन'—महानगर की प्रदक्षिणा	*डॉ. मधुसूदन पाटिल*	160

गोष्ठी रपट

देश की भावात्मक एकता का महायज्ञ	*सुनील पांडेय*	163

लोक कलाओं का संरक्षण और समन्वय

डॉ. शंकर दयाल शर्मा

"मैं समझता हूँ कि हमारी लोक-संस्कृति के बारे में यह जानना बहुत जरुरी है कि ये चीज़ें केवल किसी कलाकार के दिमाग को ही व्यक्त नहीं करतीं, बल्कि आम लोगों के जीवनमूल्यों और उनकी सोच को भी व्यक्त करती है, और ये जीवन मूल्य और सोच राजस्थान से होते हुए भी पूरे देश के हैं। राज्यों की राजनीतिक सीमाएं रहती हैं, लेकिन कला, संस्कृति और सृजनात्मकता असीम होती है।"

इस केंद्र का नाम हमारे देश के एक संवेदनशील दृष्टा, जनमानस से समरस राजनेता तथा संस्कृति एवं लोक-कलाओं को राष्ट्र एवं मानवीय उन्नति में महत्वपूर्ण स्थान देने वाले पंडित जवाहरलाल नेहरु के नाम पर रखा गया है। इसे मैं बहुत सही मानता हूँ। उन्हें लोक-मानस की बड़ी अच्छी समझ थी और उसी के अनुरूप उन्होंने राष्ट्र-विकास की कल्पना की थी।

इसी दृष्टि से उन्होंने साहित्य अकादमी, ललित कला अकादमी तथा संगीत नाटक अकादमी आदि संस्थानों की स्थापना की थी। मेरा विश्वास है कि यह संस्थान पंडित नेहरु के दिखाए रास्ते पर एक आधुनिक भारत के मस्तिष्क के निमार्ण में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा।

राजस्थान से मैं लंबे समय से जुड़ा हुआ हूं। यहां की लोक-कलाओं और संस्कृति से मैं अच्छी तरह परिचित हूं। इस राज्य को 'लोक-संस्कृति का खजाना' कहा जा सकता है।

दीवाल, पुस्तक, कपड़ा, कागज़ और लकड़ी पर बने हुए यहां के चित्र आज विश्व-स्तर पर सराहे जा रहे हैं। चित्रकला के क्षेत्र में मेवाड़ स्कूल, हाड़ोती स्कूल, मारवाड़ स्कूल और ढूढांड स्कूल की बारीकियों और चटक रंगों ने लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया

है। इन चित्रों में एक साथ भक्ति और श्रृंगार, शौर्य और प्रेम, प्रकृति, इतिहास और लोक-जीवन के चित्रण इस तरह मिलते हैं कि वे अपनी चित्रकारी में अपनी कथा कहते हुए मालूम पड़ते हैं।

राजस्थान की स्थापत्य कला में भुजाओं की शक्ति तथा अंगुलियों की कारीगरी झलकती है।

यहां के किले, महल तथा छतरियां राजपूत एवं पर्शियन स्थापत्य कला के समन्वय के सुंदर नमूने हैं। इनमें सौंदर्य, सृजनात्मकता तथा उपयोगिता का अच्छा तालमेल देखने को मिलता है।

राजस्थान के पास लोक-नाट्य, लोक-गीत एवं संगीत की भी समृद्ध एवं गहरी परंपरा है। लोक-मंचों में ख्याल, गवरी, तमाशा, स्वांग, नौटंकी, भवाई तथा भांड आदि आज भी पहले के समान लोकप्रिय हैं। इनमें से अनेक लोक-नाट्य रूपों का प्रयोग हमारे वर्तमान रंगकर्मियों ने अपने नाटकों में किया है। ऐसा किया जाना हमारे इन लोक-रूपों में आधुनिक जीवन को अभिव्यक्त करनी की क्षमता का प्रमाण है।

यहां के लोक-नृत्य ग्रासिया, तेरहताली और घूमर आदि के यहां के लोक-जीवन और उत्साह को व्यक्त करते हैं। पर्वतीय क्षेत्र के पटेल्या और लालर तथा मरुस्थलीय क्षेत्र के कुरजां, पीपली तथा घूघरी जैसे लोक-गीत लोगों के जीवनमूल्यों को अभिव्यक्त करते हैं।

सारंगी, इकतारा, चंग, पुंगी, खड़ताल की तानें यहां के लोक-गीतों और लोक-नाटकों में जबर्दस्त प्रभाव पैदा करते हैं।

राजस्थान में रचे गए 'रागमाला' ग्रंथ को मैं यहां की लोक एवं नगरीय संस्कृति के समन्वय का सबसे सुंदर प्रमाण मानता हूं। इन ग्रंथों में हमारे कवियों में गाने और बजाने से जो भाव पैदा होता है, उसको शब्दों में बांधा है। इतना ही नहीं, बल्कि चित्रकारों ने इन रागों को व्यक्ति का आकार भी दिया है। इस प्रकार इस ग्रंथ में साहित्य, चित्र, गीत और संगीत घुल-मिल जाते हैं। लोक-संस्कृति से समृद्ध ऐसे राज्य में कला-केंद्र की स्थापना न केवल उपयोगी है, बल्कि जरूरी भी है।

मैं समझता हूं कि हमारी लोक-संस्कृति के बारे में यह जानना बहुत जरूरी है कि ये चीजें केवल किसी कलाकार के दिमाग को ही व्यक्त नहीं करतीं, बल्कि आम लोगों के जीवनमूल्यों और उनकी सोच को भी व्यक्त करती हैं, और ये जीवनमूल्य और सोच राजस्थान के होते हुए भी पूरे देश के हैं। राज्यों की राजनीतिक सीमाएं रहती हैं, लेकिन कला, संस्कृति और सृजनात्मकता असीम होती है। इस सत्य को समझना आवश्यक है।

राजस्थानी लोक-संस्कृति में शौर्य, भक्ति, देश के प्रति त्याग, करुणा एवं अनुराग की भावना मिलती है। इसलिए मैं इन लोक-कलाओं को केवल कला की संपत्ति नहीं मानता, बल्कि चेतना की भी संपत्ति मानता हूं। मुझे यह बात बहुत जरूरी लगती है कि

हमारी संस्कृति की इस ऐतिहासिक विरासत की रक्षा की जाए और उसे आधुनिक परिप्रेक्ष्य में लोगों तक पहुंचाया जाए।

हमारी कला में व्यक्त होते ये जीवनमूल्य और कलात्मकता किसी वर्ग-विशेष की नहीं, बल्कि हमारे देश के आम लोगों की हैं। जड़ों से पैदा हुई हमारी यह संस्कृति पूरे देश को एक-दूसरे से जोड़ती है। बल्कि मैं तो यहां तक कहना चाहूंगा कि केवल देश को ही नहीं जोड़ती, बल्कि अन्य देशों को भी जोड़ती है। इन परस्पर संबंध सूत्रों को बचाने का दायित्व सरकार पर, हमारे कलाकारों पर और हमारे लोगों पर है, लेकिन हमें यह काम बड़ी सजगता के साथ करना होगा। सजगता से मेरा मतलब यह है कि हमें उन सबको केवल इसलिए नहीं रखना है कि वे पुराने हैं, बल्कि हमें उन्हें चुनकर रखना है, जो आधुनिक परिप्रेक्ष्य में उपयोगी है, जो भविष्य के लिए बहुत उपयोगी होंगे और सबसे बड़ी बात यह है कि जिनमें भारतीय अस्मिता जीवंत हो तथा जो भारतीय अस्मिता को अभिव्यक्त करते हों।

पहले हमारी लोक-कलाओं को राजाओं का संरक्षण प्राप्त था। अब यह भूमिका हमारी राज्य सरकारों को निभानी है। लेकिन यहां यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि ऐसी संस्था सही अर्थ में लोगों की संस्था बने। देश के लोग, विशेषकर लोक-कलाओं से जुड़े हुए हमारे गांव के लोग अपने-आपको इससे सीधे-सीधे जुड़ा हुआ महसूस करें। संस्था की कार्य-प्रणाली ऐसी हो कि वह गांवों में छिपी हुई कलात्मक क्षमता को सामने लाए, उसे दिशा दे और उसे इस तरह से मदद दे, ताकि वह क्षमता स्वाभाविक रूप से फल-फूल सके।

संस्था का यह दायित्व है कि हमारे लोगों में एक कलात्मक मानसिकता का विकास करे और उनमें संरचनात्मकता का भाव पैदा करे। ऐसा होने से लोगों की रचनात्मक क्षमता का लाभ जीवन के अन्य क्षेत्रों को भी मिल सकेगा।

संस्था को यह भी देखना है कि वह अपने यहां की इस कलात्मक क्षमता को अन्य राज्यों की कलात्मक क्षमता से जोड़े और इस प्रकार परस्पर आदान-प्रदान द्वारा भारतीयता के स्वरूप को आधुनिक परिप्रेक्ष्य में रखकर उसकी सार्थकता स्थापित करे।

मैं यहां यह बात विशेष रूप से कहना चाहूंगा कि हमारी कला और संस्कृति किसी संग्रहालय में ही रखने की चीज़ नहीं है। ये सब हमारी परंपरा के जीवंत तत्व हैं, जो हमारे लोगों के रोजमर्रा के व्यवहार में व्यक्त होते रहते हैं। यह ऐसी संपत्ति है, जो भारत के लिए ही नहीं, बल्कि संपूर्ण मानव-जाति के लिए उपयोगी है। इसलिए इस सांस्कृतिक सृजनात्मकता को कैद करके दबाकर नहीं रखना है, बल्कि इसे विमुक्त करके विस्तृत होने के साधन उपलब्ध कराने हैं।

मुझे इस समय पंडित नेहरू के शब्द याद आ रहे हैं, जो उन्होंने रामधारीसिंह 'दिनकर' की पुस्तक 'संस्कृति के चार अध्याय' की भूमिका में लिखे हैं। उन्होंने लिखा है :

"भारत के किसी भी समुदाय का एक वर्ग यह दावा नहीं कर सकता कि उसका

भारत के दिल और दिमाग के ऊपर अकेले अधिकार है। देश आज जैसा भी है, उसे बनाने में सभी भागों के लोगों की हिस्सेदारी रही है। यदि हम इस बुनियादी सच्चाई को नहीं समझते, तो हम भारत को नहीं समझते और यदि हम भारत को नहीं समझते तो पूरी तरह काम नहीं कर सकते और अपने देश की प्रभावशाली तरीके से खिदमत नहीं कर सकते।"

यह बहुत बड़ी और सही बात पंडित नेहरू ने कही थी, और हमारे साहित्यकारों, कलाकारों और उनसे जुड़े संस्थानों को इसे समझने की जरूरत है। हमारे देश के सामने खड़ी चुनौतियों का सामना समन्वय की इस भावना द्वारा किया जा सकता है। मैं समझता हूं कि यह संस्थान इस दिशा में प्रयास करेगा।

मुझे बताया गया कि यह केंद्र जहां एक ओर दृश्य एवं प्रदर्शनकारी कला-रूपों का संरक्षण करेगा, वहीं दूसरी ओर विभिन्न माध्यमों से कला के विस्तार एवं विकास के लिए भी प्रयास करेगा। निश्चित रूप से इससे हमारी ऐतिहासिक सांस्कृतिक नींव पर आधुनिक कला-रूप फल-फूलेंगे और उन्हें एक अच्छा वातावरण मिल सकेगा। इससे जहां एक ओर हमारे ग्रामीण कलाकार प्रोत्साहित होंगे, वहीं दूसरी ओर ये कलाएं अपने सीमित क्षेत्र से निकलकर बड़े परिवेश में स्थान पा सकेंगी।

अपने इन्हीं शब्दों के साथ मैं 'जवाहर कला केंद्र' के उज्ज्वल भविष्य की कामना करता हूं। □

---

8 अप्रैल 1993, जयपुर में जवाहरलाल केंद्र के उद्घाटन अवसर पर।

जड़ों की ओर लौटना

न्युटी वा थ्योंगो

न्युटी वा थ्योंगो का नाम रोमांचित करता है। बिना आरोप के पुलिस द्वारा गिरफ्तार किए जाने पर अफ्रीका के इस महत्वपूर्ण चिंतक एवं साहित्यकार ने जेल में अपना लेखन और चिंतन जारी रखा। केन्या के एक बड़े किसान परिवार में जन्मे न्युटी वा श्योंगो ने लंदन विश्वविद्यालय से सम्बद्ध उगांडा के एक कॉलेज में उच्च शिक्षा ग्रहण की तथा नौरोबी विश्वविद्यालय में साहित्य विभाग के अध्यक्ष रहे। न्युटी वा थ्योंगो पहले अंग्रेजी में लिखा करते थे, बहुत चर्चित भी हुए परन्तु विश्वस्तर पर लोकप्रियता मिल जाने के बाद उन्होंने प्रण किया कि वह अब अपनी मातृभाषा शिकुयू में ही लिखेंगे। लेख, नाटक एवं उपन्यास जैसी विधाओं में इस रचनाकार ने बेहतरीन कृतियां दी हैं। इनका पहली उपन्यास 'रिवर बिटवीन' सन् 1961 में प्रकाशित हुआ था। 'जड़ों की ओर लौटना' का स्वर हमें विवश करता है कि हम अपनी संस्कृति अपने परिवेश से प्यार करें और अपने पैरों तले की जमीन को पहचानें। यदि हम सुसंस्कृत वीरतापूर्ण देश का निमार्ण चाहते हैं तो हमें अपने जड़ों की ओर लौटना ही होगा।''

1958 में घाना की आजादी के एक वर्ष बाद नाइजीरिया के एक युवा लेखक चीनुआ एचेबे का पहला उपन्यास थिंग्स फाल एपार्ट प्रकाशित हुआ और इसके साथ ही साहित्य के क्षेत्र में जिस नई धारा की शुरूआत हुई वह तब से आज तक अनेक अफ्रीकी लेखकों की रचनाओं के रूप में जारी है।

इन लेखकों की ढेर सारी रचनाओं की विषय-वस्तु अलग-अलग हैं। मिसाल के तौर पर कुछ उपन्यासों, नाटकों और कविताओं का कथ्य जबर्दस्त रूप से साम्राज्यवाद-विरोधी है जबकि कुछ अन्य रचनाएं आज के अफ्रीका में सामाजिक ऐतिहासिक शक्ति के रूप में

साम्राज्यवाद के प्रति एकदम लापरवाह हैं। यहां तक कि एक ही विषय-वस्तु के प्रति लेखकों ने अलग-अलग तेवर और रवैया अख्तियार किया है। कुछ का कथ्य ऐसा है जो टोक्यो, बॉन, पेरिस, लंदन, न्यूयार्क में बैठे विदेशी धन्ना सेठों और स्थानीय धनकुबेरों की सांठगांठ से हो रहे शोषण के खिलाफ अफ्रीका के किसानों और मजदूरों के संघर्ष की वास्तविकता का चित्रण करता है जबकि कुछ अन्य लेखकों ने हमेशा इस सच्चाई को ढांपने की कोशिश की है, ऐसा कथ्य प्रस्तुत किया है जो हमें एक उनींदी अवस्था में स्वागत-भाषण तक ले जाता है: ''ओह कितनी खूबसूरत है फर्स्ट बैंक ऑफ शिकागो अथवा न्यूयार्क की शानदार इमारत जो इंटरनेशनल लाइफ हाउस और हिल्टन के साथ-साथ खड़ी है मथारे घाटी की शांति और सौंद३ के बीच।'' अब यह एक ऐसा विवरण है जो हमें यह समझाना चाहता है कि एक कराड़ भूखों-नंगों और घर-बार से वंचित मजदूरों-किसानों की गाढ़ी मेहनत से 10 अरबपतियों का जन्म लेना ही विकास है।

लेकिन 50 के दशक में जब थिंग्स फाल एपार्ट लिखा गया, तब से लेकर 70 के दशक में पेटल्स ऑफ ब्लड लिखे जाने तक लगभग सभी उपन्यास, कविताएं और नाटक विदेशी भाषाओं में लिखे गए। इस मामले में उनमें एक समानता है।

वेस्टइंडीज के किसी विचारक ने एक बार कहा था कि भाषा का चुनाव अपने लिए एक दुनिया का चुनाव करना होता है और हालांकि मैं किसी दुनिया के ऊपर भाषा के कल्पित प्रभुत्व को नहीं मानता पर भाषा का चुनाव करते समय ही किसी साहित्यकार के सामने खड़े सबसे अहम सवाल का जवाब मिल जाता है कि मैं किसके लिए लिख रहा हूं? मेरा पाठक कौन है? अगर आप किसी विदेशी भाषा में मसलन फ्रेंच में लिख रहे हैं तो आप केवल उन्हीं लोगों तक पहुंच रहे हैं जो फ्रेंच जानते हैं। अगर अंग्रेजी में लिख रहे हैं जो केवल अंग्रेजी भाषी पाठक वर्ग तक ही आपकी पहुंच हो रही है। व्यवहार में आपकी रचना विदेशियों तक और आपको देश के उन कुछ पाठकों तक पहुंचती है जो उस भाषा को जानते हैं। अगर केन्या का कोई लेखक अंग्रेजी में लिखता है तो बेशक उसका कथ्य कितना भी क्रांतिकारी क्यों न हो, वह निश्चय ही केन्या के किसानों और मजदूरों तक नहीं पहुंच पाता और न उसका इनके साथ सीधा संवाद ही बन पाता है। अगर कोई केन्यावासी अंग्रेजी में (या फ्रेंच में जैसा कि इस समय फैशन है) किसी नाटक का मंचन करता है तो वही सही अर्थों में केन्याई दर्शकों तक अपनी बात संप्रेषित नहीं कर पाता है।

पाठक कौन है—इसका लेखक के सामने मौजूद उन समस्याओं से गहरा ताल्लुक है जिनकी मैं चर्चा करने जा रहा हूं। मेरी रचना की विषय-वस्तु और उसका सार क्या है? मैं किसके पक्ष में उस विषय-वस्तु को देख रहा हूं—क्या उस विषय-वस्तु के प्रति मेरी दृष्टि आलोचनात्मक है? किसान-मजदूर पाठकों या दर्शकों के लिए आप उस तरह का लेखन या मंचन कर ही नहीं सकते जो अफ्रीका के परोपजीवी रईसजादों के लिए करते हैं।

बुर्जुआ वर्ग ऐसे साहित्य को पसंद करता है जो उसके अंदर एक गुदगुदी पैदा करे, जो उसे बिना मथारे घाटी में गए उसकी सैर करा दे। उसको चाहिए या तो सेक्स का भंडार या पश्चिमी फूहड़ संगीत की जूठन जिसका इन दिनों केन्या के नाट्यजगत में खूब चलन है। उसे चाहिए व्हिस्की की झूंठ के साथ दिमागी सुकून की झूठी शान। इस वर्ग को बताइए कि वह जो पानी पी रहा है उसे प्यासे के मुंह से छीन लिया गया है, उसके शरीर पर जो कपड़े हैं वे नंगे बच्चों के हिस्से के हैं, उन्हें उस नींद से जगाइए जो उन्हें ख़ुद धोखा दे रही है और ऐसा करते ही आप पाएंगे कि सरकार ने आपको जेल के सीखचों में कैद कर दिया है। इसके विपरीत अगर आप उस भाषा में लिखते हैं या कोई मंचन करते हैं जिसे किसानों और मजदूरों के बीच समझा जाता है तो आपको अपनी साहित्यिक चेतना की तलाश करनी होगी, यह देखना होगा कि आप उनके जीवन का सही चित्रण करते हैं या नहीं। आप उनकी गरीबी का कारण दैवी इच्छा मानते हैं या उन्हें बताते हैं कि यह मनुष्य द्वारा संचालित है और इसलिए इसके खिलाफ संघर्ष किया जाना चाहिए।

एक अफ्रीकी लेखक जिसने विदेशी भाषाओं पर पूर्ण निर्भरता और इन भाषाओं की साहित्यिक चाकरी स्वीकार कर ली हो और साथ ही जो अपने देश के पाठक या दर्शक वर्ग से मुखातिब होना चाहता हो, उसकी तुलना निम्नांकित पात्रों से की जा सकती है जिनमें से एक मुझे लिमरू और दूसरा नाकुरू में मिला था।

1966 की बात है। मेरे गांव कासिमरीथू (लिमरू) की एक लड़की नर्स की ट्रेनिंग के लिए इंग्लैंड गई। उसकी उम्र लगभग बीस वर्ष थी। इंग्लैंड में उसने दो साल गुजारे। जब वह गांव लौटी तो अपने स्वागत में इकट्ठा किसानों के बीच उसने एक दुभाषिये की मदद से भाषण किया। अफवाह तो यह उड़ी कि वह अपने मां-बाप से भी बातचीत दुभाषिये की ही मदद से करती है। दो वर्ष के इंग्लैंड ने उसका अपनी मातृभाषा का बीस साल का ज्ञान ही भुला दिया।

कुछ साल पहले मैं नाकुरू में अपने एक दोस्त के घर गया। अभी उस समय तक नाकुरू को केन्या की समकालीन राजनीतिक शब्दावली में आज जैसा स्थान नहीं मिला था। बरामदे में ही मेरी भेंट एक दंपति और उनकी सात वर्षीया पुत्री से हो गई। मैं उस दंपती को जानता था क्योंकि मैकेरेरे में हम लोग कभी साथ-साथ पढ़ चुके थे और उपनिवेशवाद-विरोधी गतिविधियों में सक्रिय रह चुके थे। अब इसके बाद का दृश्य देखिए :

मां अपनी बेटी को बोलने के लिए कोंचती है। बेटी अंग्रेजी में बोलने लगती है। मां फिर बेटी से कोई किताब पढ़ने का आग्रह करती है—शायद विनी द पूह। मैं उस बेटी से गिकुयू में बात करने की भूल कर बैठता हूं। जवाब में बेटी ढेर सारे अंग्रेजी के शब्द फर्राटे के साथ बोल जाती है जिन्हें समझना मुश्किल है। मां गर्व से मुस्कुराती है, फिर चेहरे पर उदासी ओढ़कर बोलती है: "आजकल के बच्चे, अपने देश की भाषा भी नहीं बोल

सकते। जब देखो अंग्रेजी, जब देखो अंग्रेजी। हम लोगों का जमाना कितना अच्छा था—तुम्हें तो याद होगा।''

साफ दिखाई दे रहा था कि मां-बाप दोनों को इस बात का बहुत गर्व था कि उनकी बेटी न केवल अंग्रेजी बोल लेती है बल्कि गिकुयू में बात भी कर सकती है। इस प्रकार आप देखेंगे कि अपने देश की भाषा को न जानना शर्म की बात न होकर शान की बात हो गई है।

इस आरोप को झेलने के साथ ही विदेशी भाषा के चक्कर में राष्ट्रीय भाषा को तिलांजलि दे दी गई, अफ्रीकी लेखक की स्थिति उपरोक्त नर्स और मां-बेटी के बीच त्रिशंकु जैसी हो गई है। मैं आपके सामने कुछ ठोस उदाहरण रखना चाहूंगा : 1963 में नाइजीरियाई आलोचक ओबा वली ने 'ट्रांजिशन' पत्रिका के लिए एक लेख लिखा जिसमें उन्होंने बताया कि उन दिनों जिस तरह का लेखन हो रहा था या जिस लेखन को समझा जा रहा था वह यूरोपीय साहित्य की मुख्य धारा का एक मामूली-सा पुछल्ला था :

> ''पढ़े-लिखे अफ्रीकियों द्वारा अंग्रेजी और फ्रेंच को, तनिक भी आलोचनात्मक दृष्टि अपनाए बिना, लेखन का अनिवार्य माध्यम स्वीकार कर लेने से ही दिशा भटक गई और इसने अफ्रीकी साहित्य तथा संस्कृति के विकास की संभावनाओं को समाप्त कर दिया। दूसरे शब्दों में कहें तो जब तक ये लेखक, इनकी पश्चिमी धात्रियां इस तथ्य को स्वीकार नहीं करेंगे कि सही अफ्रीकी साहित्य अफ्रीकी भाषाओं में ही लिखा जाना चाहिए, ये अंधेरे में तीर मारते रहेंगे और एक बांझपन, अरचनात्मकता और निराशा के शिकार होते रहेंगे ... (अफ्रीकी साहित्य में रक्त और ऊर्जा का अभाव है) क्योंकि इनका साहित्य अफ्रीका के नए विश्वविद्यालयों के उन गिने-चुने स्नातकों तक ही सीमित है जो यूरोपीय साहित्य और संस्कृति से सराबोर है। साधारण स्थानीय पाठक या दर्शक जिसकी किसी परंपरागत यूरोपीय तौर-तरीके से पढ़ाई नहीं हुई है और जो आबादी का बहुत ही बड़ा हिस्सा है, इस तरह के साहित्य में भागीदार हो ही नहीं सकता।''
> (दि डेउ एंड ऑफ अफ्रीकन लिट्रेचर', ट्रांजिशन-10, 1963)

इस लेख से अफ्रीकी लेखक काफी नाराज हुए। वोले सोयिंका ने, जो इन दिनों स्वाहिली को इस महाद्वीप की भाषा बनाए जाने की दलीलें दे रहे हैं, बहुत ही हिकारत के साथ यह जानना चाहता कि ''ओबे वली ने इबो भाषा में या जो भी भाषा वह बोलने का दावा करते हैं उसमें मेरे नाटकों का अनुवाद करने के लिए क्या किया है।'' (ट्रांजिशन के

संपादक के नाम वोले सोयिंका का पत्र, 1963)। चीनुआ एचेबे ने ताल ठोंकते हुए ऐलान किया कि "मुझे यह भाषा दी गई है और मैं इसमें लिखता रहूंगा।"

एजकिएल म्फालेले ने, जिन्हें काफी समय से अफ्रीकी साहित्य का प्रमुख आलोचक समझा जाता था, और भी खुलकर अंग्रेजी भाषा के साथ अपने प्रेम का इजहार किया—दरअसल उन्होंने इसे गूढ़ राजनीतिक शक्ति से भरपूर होने का श्रेय दिया :

> "अंग्रेजी और फ्रेंच ऐसी सर्वमान्य भाषाएं हैं जिनके जरिए गोरे दमनकारियों के खिलाफ एक राष्ट्रीय मोर्चा बनाया जा सकता है। जहां से गोरे शासक अब वापस चले गए हैं जैसा कि स्वाधीन राष्ट्रों से, वहां ये दोनों भाषाएं आज भी लोगों को एकताबद्ध करने वाली ताकत है" (ट्रांजिशन के संपादक के नाम म्फालेले का पत्र, 1963)

दक्षिण अफ्रीका का जिक्र करते हुए म्फालेले ने 'देशी' (वर्नाकुलर) भाषाओं को प्रोत्साहन देने के लिए फासिस्ट शासकों की आलोचना की :

> "...दक्षिणी अफ्रीकी सरकार ने आदेश जारी किया है कि माध्यमिक स्कूलों के स्तर पर अफ्रीकी भाषाओं को शिक्षा के माध्यम के रूप में इस्तेमाल किया जाएगा। जाहिर है कि इसका मकसद काले लोगों को शिक्षित होने से रोकना है क्योंकि पिछली प्रणालियों में, जब शुरु के छः वर्षों में प्राथमिक शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी था, एक बड़ा शक्तिशाली शिक्षित वर्ग पैदा हुआ और इसी वर्ग में से आधुनिक विवेकवान राजनीतिक नेताओं का जन्म हुआ जो सचमुच गोरों के प्रभुत्व के लिए चुनौती बने।" (ट्रांजिशन के संपादक के नाम म्फोलेले का पत्र, 1963)

म्फालेले यह नहीं समझ पाए कि दक्षिण अफ्रीकी सरकार अंग्रेजी को इसलिए नापसंद नहीं करती है कि इस भाषा में कोई गूढ़ राजनीतिक विशिष्टता है, उसके नापसंद करने का कारण तो यह है कि अंग्रेजी में विविध विषयों पर बगैर सेंसर किया किया हुआ साहित्य सहज उपलब्ध है। अफ्रीकी भाषाओं के प्रकाशन-गृहों पर सरकारी नियंत्रण से सरकार को उम्मीद है कि वह उस सामग्री पर नियंत्रण रख सकेगी जो जनता को पढ़ने के लिए उपलब्ध होगा। म्फोलेले के लिए अफ्रीकी भाषाओं के मुकाबले अंग्रेजी राजनीतिक तौर पर श्रेष्ठ है। जिस 'आधुनिक विवेकवान नेतृत्व' की म्फालेले बात कर रहे थे उसे फासिज्म का मुकाबला करने का सही रास्ता दिखाने के लिए सोवेटो के स्कूली बच्चों का इंतजार करना पड़ा।

म्फालेले के नजरिये की झलक प्रोफेसर अली मजरूई के उन लेखों में बराबर देखने को मिली जो उन्होंने अंग्रेजी भाषा के बारे में लिखे हैं। मिसाल के तौर पर अपनी पुस्तक कल्चरल इंजीनियरिंग एंड नेशन बिल्डिंग इन ईस्ट अफ्रीका में वह दलील देते हैं कि यह अंग्रेजी भाषा, अंग्रेजी साहित्य और संस्कृति ही है जिसने पूर्वी अफ्रीका में राष्ट्रवाद को जन्म दिया।

एक अन्य अफ्रीकी लेखक ताबान लो लियोंग ने अपनी पुस्तक दि लास्ट वर्ड में बताया कि चूंकि उसके पिता यूनीवर्सिटी में उसके अंग्रेजी पढ़ने से बहुत चिढ़ते थे, इसलिए जब उसे अपने पिता की मृत्यु की खबर मिली तो वह बहुत खुश हुआ। अब वह आजादी के साथ अंग्रेजी पढ़ सकता था।

और अंत में मैं खुद अपने बारे में याद करता हूं। 1965 या 66 में बी.बी.सी. के यूरोपीय भाषा कार्यक्रम के लिए 'दूसरी भाषा के रूप में अंग्रेजी' विषय पर एक वार्ता लिखते समय मैंने, अपनी औपचारिक शिक्षा से उत्पन्न घोर अज्ञान में, अफ्रीकी भाषाओं में लेखन के मुकाबले अंग्रेजी भाषा में लेखन के फायदे गिनाए थे। इसके पक्ष में मैंने जो तमाम तर्क दिए थे उनमें से एक तर्क यह था कि अंग्रेजी के पास एक विशाल शब्दभंडार है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अधिकांश अफ्रीकी लेखकों की स्थिति गेराल्ड मूर जैसे विदेशी समीक्षकों से भिन्न नहीं है जिन्होंने अफ्रीकी लेखकों की सराहना अंग्रेजी के माध्यम से साहित्यिक लेखन करने के लिए की। अफ्रीकी साहित्य पर लिखी गई गेराल्ड मूर की पुस्तक का नाम है दि चोजन टंग—ठीक उसी तर्ज पर जिस तरह बाइबिल में चोजेन पीपुल का जिक्र है। मतलब यह कि अंग्रेजी भी ईश्वर द्वारा पसंद की गई भाषा है, वैसे ही जैसे इसरायली लोग खुद को पृथ्वी पर ईश्वर द्वारा पसंद नस्ल समझते हैं।

ओबी वली के लेख की मुख्य खामी यह है कि उसमें साम्राज्यवाद के मुद्दे की अनदेखी की गई है। वह इसे समझ नहीं सके या समझ भी सके तो इस पर जोर नहीं दे सके कि अफ्रीकी लेखक की दुर्दशा के मूल कारण की ऐतिहासिक व्याख्या अफ्रीकी भाषा और संस्कृति के औपनिवेशिक नस्लवादी घेराव तथा इसके जबर्दस्त दमन के संदर्भ में ही की जा सकती है, कि अफ्रीकी लेखक खुद भी उसी निम्न पूंजीपति वर्ग का हिस्सा है जिसने पश्चिमी बुर्जुवा शिक्षा और संस्कृति तथा पश्चिमी विश्वदृष्टि को पूरी आत्मसात कर लिया है अथवा जिसे आत्मसात करा दिया गया है, यह एक ऐसा निम्नपूंजीपति वर्ग है जिसने जब-जब विद्रोह की जरूरत महसूस की तब-तब उसी भाषा और संस्कृति के दायरे में विद्रोह किया जो उसे विरासत में मिली थी।

बेशक, मेरा यह कहने का इरादा नहीं है कि जिन लेखकों को मैंने ऊपर उद्धृत किया है वे सभी आज भी राष्ट्रीय और विदेशी भाषाओं के बारे में वही दृष्टिकोण रखते हैं। इन्होंने अपना नजरिया बदला होगा, मैंने तो निश्चय ही बदला है।

लेकिन यह बात अभी भी सही है कि किसी भी अफ्रीकी लेखक ने ओबी वली की

चुनौती का संतोषजनक जवाब नहीं दिया क्योंकि इस चुनौती का मुकाबला वे सार्थक ढंग से तभी कर सकते थे जब वे अपने वर्ग-आधार को सचेत ढंग से प्रयास करके छोड़ते और किसानों-मजदूरों के उन संघर्षों से तादात्म्य स्थापित करते जो साम्राज्यवादी बुर्जुआ और दलाल बुर्जुआ द्वारा किए जा रहे शोषण के खिलाफ चल रहे थे ताकि हर तरह के शोषण, उत्पीड़न और प्रभुत्व से मुक्ति मिल सके। ऐसी हालत में उन्हें अपने सारे बौद्धिक स्रोतों को किसानों-मजदूरों के संघर्ष की सेवा में लगाना होता और यह काम सत्ताधारी वर्ग की अंतरात्मा को जगाने की अपील करने वाले लंबे-चौड़े भाषणों के जरिए नहीं बल्कि संघर्षों की सही तस्वीर प्रस्तुत करके संभव था जो अफ्रीका के मान-सम्मान के लिए ऐतिहासिक संघर्ष में लगे एकमात्र गठजोड़ यानी मजदूर-किसान गठजोड़ के पक्ष में होती।

ऐसा करने की बजाय निम्न पूंजीवादी अफ्रीकी लेखकों ने भाषा और पाठक की जरूरत को ध्यान में रखकर अफ्रीकी किसानों और मजदूरों का ऐसा चरित्र-चित्रण किया कि उनके अपमानों का अंबार लगता गया। प्रायः अफ्रीकी किसान का चित्रण एक भोंदू व्यक्ति के रूप में किया जाता था क्योंकि वे अपनी भावनाएं जिस टूटी-फूटी अंग्रेजी में व्यक्त करते थे उससे उनकी एक अजीबोगरीब तस्वीर उभरती थी। अक्सर किसानों-मजदूरों के चरित्र में निम्न पूंजीपति वर्ग की ढुलमुल मानसिकता और निराशावादी विश्वदृष्टि दिखाई पड़ती है। सबसे ज्यादा अपमानित तो उन्हें तब किया जाता था जब किसी चरित्र को अगर उचित मान-सम्मान दिया भी गया और उसकी सही विश्वदृष्टि को पाठकों के सामने रखा भी गया तो उसके मुंह से यह सब विदेशी भाषा में कहलवाया गया। इस प्रकार अफ्रीकी लेखकों की रचनाओं में लाखों किसानों की जबान काट ली गई—कहा जा सकता है कि अफ्रीकी साहित्य की प्रयोगशाला में किसानों की प्लास्टिक सर्जरी की गई और वे जब प्रयोगशाला से बाहर निकले तो उनके पास अंग्रेजी, फ्रेंच या पुर्तगाली जबान थी। अफ्रीकी भाषा बोलने वाले किसान और मजदूर वर्ग को मान देने की यह इच्छा और साहित्य में विदेशी भाषा बोलने वाले किसान और मजदूर वर्ग का सृजन ही उसका सबसे बड़ा अपमान था।

बेशक, कथ्य और रूप के बिना महज अफ्रीकी भाषा में लिखने को ही मैं कोई चमत्कार कर देने वाला गुण बताकर नहीं पेश करना चाहता। लेकिन ओबी वली ने अफ्रीकी साहित्य के मांस-मज्जा के महत्वपूर्ण स्रोत के रूप में जिस किसान-मजदूर श्रोता या पाठक का सवाल उठाया है, वह एक बुनियादी सवाल है। आधुनिक केन्या की राष्ट्रीय संस्कृति की दो सर्वाधिक महत्वपूर्ण जड़ों के रूप में राष्ट्रीय साहित्य और राष्ट्रीय थियेटर पर अर्थपूर्ण बातचीत करने से पहले खास तौर से केन्या के लेखकों को भाषा एवं पाठक/दर्शक के चयन की चुनौती अनिवार्यतः पूरी करनी चाहिए।

दरअसल अभी तक केन्या के लेखकों ने अंग्रेजी में जो कुछ भी लिखा है वह अफ्रीकी साहित्य है ही नहीं। यह एफ्रो-सैक्शन साहित्य है, (जो फ्रांसीसी, पुर्तगाली, इतालवी,

स्पैनिश जैसी विदेशी भाषाओं में अफ्रीकी लेखकों द्वारा तैयार किए गए साहित्य का एक हिस्सा है जिसे हम सही अर्थों में एफ्रो-यूरोपीय साहित्य कह सकते हैं।)

केन्या का राष्ट्रीय साहित्य अधिकांशतः उन विभिन्न राष्ट्रीयताओं की भाषाओं में लिखा जाना चाहिए जिनसे आधुनिक केन्या का निर्माण हुआ है। केन्या का राष्ट्रीय साहित्य केन्या की सभी राष्ट्रीयताओं द्वारा बोली जाने वाली भाषाओं में उपलब्ध संस्कृति और इतिहास की समृद्ध राष्ट्रीय परंपराओं का इस्तेमाल करके ही शक्ति पा सकता है। दूसरे शब्दों में कहें तो केन्या का राष्ट्रीय साहित्य तभी विकसित और समृद्ध हो सकता है जब वह केन्या के व्यापक किसान समुदाय की समृद्ध संस्कृति, भाषा और इतिहास की तह में अपनी जड़ों के लिए प्रवेश करें क्योंकि केन्या की विभिन्न राष्ट्रीयताओं में से प्रत्येक में किसान समुदाय ही एक ऐसा समुदाय है जो बहुमत में है।

मैं इस मुद्दे पर थोड़ा और बात कहना चाहूंगा। किसी भी भाषा का सामाजिक आधार जनता द्वारा अपने भौतिक जीवन के उत्पादन में होता है—मानव समुदाय के उन व्यावहारिक कार्यों में रोटी, कपड़ा और मकान सरीखी जीवन की भौतिक सुविधाएं जुटाने के लिए मिलजुलकर प्रकृति के साथ संघर्ष के रूप में सामने आते हैं। वाचिक संकेत-चिह्न के रूप में भाषा श्रम के दौरान जनता के बीच संप्रेषण की जरूरत से उपजा है अर्थात यह संपति के उत्पादन, विनिमय और वितरण से संबद्ध है। ऐतिहासकि दृष्टि से भाषाओं का जन्म एक सामाजिक आवश्यकता के रूप में होता है। लेकिन एक लंबे समय के दौरान मौखिक-संकेत चिह्नों की खास प्रणाली प्रकृति तथा सामाजिक उत्पादन के क्षेत्र में जनता के एक वर्ग द्वारा किए जा रहे दोहरे संघर्ष की ऐतिहासिक चेतना को अभिव्यक्त करने लगती है। समय बीतने के साथ भाषा उसके सामूहिक संघर्षों का 'मेमोरी बैंक' बन जाती है। इस प्रकार भाषा में उस ऐतिहासिक चेतना की निरंतरता और परिवर्तन दोनों की अभिव्यक्ति होती है। एक खास जनसमुदाय के सामूहिक स्मृतिकोष के रूप में भाषा के इस पहलू को ही कुछ लोगों ने भाषा की रहस्यात्मक स्वाधीनता कहा है। यही वह पहलू है जिसने देशों को और लोगों को उस समय हथियार उठाने के लिए विवश किया जब उन्हें लगा कि या तो उनकी भाषा का पूरी तरह सफाया होने जा रहा है अथवा उसे आत्मसात करने वाली ताकतें प्रबल हो गई हैं क्योंकि ऐसा होने का अर्थ उस जनता के अतीत की उपलब्धियों और असफलताओं के सामूहिक स्मृतिकोष का सफाया होना है जो उनकी अस्मिता का आधार है। यह उस समुदाय को उखाड़कर इतिहास के बाहर फेंक देने जैसा है।

इतिहास विभिन्न पीढ़ियों के उत्तराधिकार के सिवा और कुछ नहीं है। इनमें से प्रत्येक पीढ़ी अपनी पूर्ववर्ती पीढ़ी से प्राप्त भौतिक संपदा, पूंजी तथा उत्पादन शक्तियों का दोहन करती है। इस प्रकार एक ओर पूरी तरह बदली परिस्थितियों में परंपरागत

क्रियाशीलता जारी रहती है तो दूसरी ओर पूर्णतः परिवर्तित क्रियाशीलता पुरानी परिस्थितियों को संशोधित कर देती है। (*कार्ल मार्क्स*)

भाषा अलग-अलग पीढ़ियों के उस उत्तराधिकार का उत्पाद भी है तथा जवन-पद्धति-संस्कृति का कोष भी जो उत्पादन के क्षेत्र में सामूहिक अनुभवों के उस संशोधनों को अभिव्यक्त करता है। बिंबों में सोचने की प्रक्रिया के रूप में साहित्य भाषा का इस्तेमाल करता है और उस भाषा में मूर्त सामूहिक अनुभव यानी इतिहास से प्रेरणा लेता है।

रचनाकर्म करते समय लेखक को अतीत समस्त फुसफुसाहटों और चीखों क्रंदन और प्यार तथा नफरत के स्वर चाहिए और ये स्वर किसी लेखक तक एक विदेशी भाषा में कभी नहीं पहुंच सकते।

हम केन्या के लेखक अब अधिक समय तक इन सवालों से कन्नी नहीं काट सकतेः हमारा साहित्य किसी भाषा और इतिहास पर टिका होगा? क्या विदेशी भाषाओं पर और उन संस्कृति तथा इतिहास पर जिन्हें, वे भाषाएं हम तक पहुंचा रही है? या ढोलू, किस्वाहिली, गिकुयू, लुलुह्या, किकाम्बा, किमासाई, किगिरीआमा जैसी अपनी राष्ट्रीय भाषाओं द्वारा हम तक पहुंचने वाली संस्कृतियों और इतिहास पर?

ये सवाल हमें पाठकों या श्रोताओं के मुद्दे पर वापस लाते है। अगर केन्या का कोई लेखक किसानों और मजदूरों से बात करना चाहता है तो उसी भाषा मे लिखना चाहिए जो भाषा वहां के मजदूर-किसान बोलते हैं यानी केन्या की विभिन्न राष्ट्रीयताओं द्वारा बोली जाने वाली भाषाओं में अथवा समूचे केन्या की राष्ट्रीय भाषा अर्थात किस्वाहिली में। दूसरी तरफ अगर वह अपनी बात विदेशियों और विदेशी भाषाएं बोलने वाले लोगों को संप्रेषित करना चाहता है तब उसे अंग्रेजी, फ्रांसीसी या जर्मन भाषा (जिस भाषा-भाषी से वह बात करना चाहता है) में लिखना चाहिए। अगर केन्या का कोई लेखक केन्या की राष्ट्रीय मुख्य धारा का हिस्सा बनना चाहता है और यहां के अतीत एवं वर्तमान के अनेक राष्ट्रीय स्वरों से प्रेरणा और शक्ति लेना चाहता है तो उसे अपनी राष्ट्रीय भाषाओं का ही इस्तेमाल करना चाहिए। लेकिन अगर वह विदेशी स्वरों से प्रेरणा और शक्ति लेने का इच्छुक है और विदेशी मुख्यधारा का हिस्सा बनना चाहता है तो उसे विदेशी भाषाओं का इस्तेमाल करना चाहिए। यह चुनाव करते समय केन्या की राष्ट्रीय भाषाओं का संघर्ष साम्राज्यवादी प्रभुत्व के खिलाफ केन्या की राष्ट्रीय संस्कृति के व्यापक ऐतिहासिक संघर्ष का ही हिस्सा है।

'लैंग्वेज एंड पॉलिटिक्स इन केन्या' शीर्षक एक अत्यंत जानकारी पूर्ण पर्चे में डा. करेगा मुताहा ने बताया है कि 1900 और 1940 के बीच केन्या में हुकूमत करने वाली ब्रिटिश सरकार का रवैया अंग्रेजी सीखने वाले केन्यावासियों के प्रति मोटे तौर पर शत्रुतापूर्ण था क्योंकि उनके अंदर उसी तरह का भय था जैसे हमने दक्षिण अफ्रीका की फासिस्ट सरकार

के मामले में देखा है कि अंग्रेजी में उपलब्ध कुछ क्रांतिकारी प्रगतिशील साहित्य और खासतौर से साम्राज्यवाद विरोधी कम्युनिस्ट साहित्य केन्या वासियों की पहुंच में आ सकता है। लेकिन 1950 तक आते-आते भावी केन्या में ब्रिटिश हितों को रक्षा के लिए ब्रिटिश साम्राज्यवादी बुर्जुआ मूल्यों से लैस एक देशी बुर्जुआवर्ग सुविचारित रूप से तैयार करने और उसे पालने-पोसने की जरूरत ने, साम्राज्यवाद-विरोधी क्रांतिकारी साहित्य केन्या में पहुंचने के भय को दरकिनार कर दिया और सरकारी स्तर पर फैसला किया गया कि अंग्रेजी को किस्वाहली की कीमत पर पढ़ाया जाय। मैं मुताही को उद्धृत करता हूं :

> अफ्रीकियों को अंग्रेजी से वंचित रखने के मामले में जो राजनीतिक एकता थी वह समाप्त हो चुकी थी। राजनीतिक तौर पर हालात की मांग थी कि अफ्रीकियों को अंग्रेजी पढ़ाई जाए। अचानक हुए इस परिवर्तन के कारणों को गवर्नर सर फिलिप माइकिल के 1954 में नैरोबी मे दिए गए भाषण में ढूंढा जा सकता है। उन्होंने कहा ... तो हमारा उद्देश्य यहां एक सभ्य समाज की स्थापना करना रहा है जिसमें उन्हीं मूल्यों और मानदंडों को जगह मिले जो ब्रिटेन के मूल्य और मानदंड हैं जिनमें हर व्यक्ति की, चाहे वह किसी भी नस्ल का क्यों न हो, दिलचस्पी और भूमिका है ... ।''

इस उद्धरण से स्पष्ट है कि केन्या में ब्रिटिश मूल्यों और मानदंडों की स्थापना के लिए एक अफ्रीकी वर्ग जरूरी था। वह वर्ग ही उन मूल्यों को इस देश में स्थापित कर सकता था। अफ्रीकियों को अंग्रेजी की शिक्षा देने के कार्यक्रम को केन्या में यूरोपीय हितों को सुरक्षा प्रदान करने की प्रक्रिया के रूप में देखा जाना चाहिए। यह काम तभी किया जा सकता था जब यह सुनिश्चित हो जाता कि ये अफ्रीकी उसी संस्कृति और दृष्टिकोण से लैस हैं जो उनके औपनिवेशिक मालिकों के हैं।

इसलिए यह आकस्मिक नहीं है कि जिस समय केन्या में बुर्जुआ एकता को मजबूत करने के लिए अंग्रेजी को एक हथियार के रूप में इस्तेमाल किया जा रहा था ठीक उसी समय ब्रिटिश साम्राज्यवादी हितों को प्रचारित-प्रसारित करने के लिए अन्य सांस्कृति संस्थाएं अस्तित्व में आ गईः 'आटडवर्ड बाउंड मूवमेंट' नामक एक संगठन बना जो केन्यावासियों को ब्रिटिश स्काउट की तरह पर्वतारोहण की मानसिकता का प्रशिक्षण दे रहा था, थियेटर रायल, कैपीटल, इम्पायर और इसी तरह के कई सिनेमा हाल खुले जिन्हें सर अर्नेस्ट वैसी ही न्यू थियेटर लिमिटेड कम्पनी चला रही थी और जिनमें ब्रिटिश फिल्में दिखाई जाती थीं, केन्या में ब्रिटिश और पश्चिमी संगीत को प्रचारित करने के लिए नैरोबी म्यूजीकल सोसाइटी और ईस्ट अफ्रीकन कंजरवेटॉयर ऑफ म्यूजिक नामक संस्थाएं सक्रिय हुईं, पीटर कालमोर और अंग्रेजों के नेता माइकेल ब्लंडेल के निर्देशन में काबेटे स्थित केबुल और वायरलेस स्टूडियोज के जरिए मनोरंजन के कार्यक्रम दिखाए जाने लगे।

लेकिन इनमें सबसे महत्वपूर्ण संस्था के रूप में थियेटर अस्तित्व में आया। 1948 में नैराबी में डोनवान माले थियेटर लिमिटेड की स्थापना हुई, 1952 में केन्या नेशनल थियेटर बना और इसकी गवर्निंग कौंसिल के निदेशकों में तत्कालीन गर्वनर सर फिलिप माइकेल भी थे, 1952 में ही मोंबासा में लिटिल थियेटर क्लब की स्थापना हुई, और इस तरह के क्लब समूचे केन्या में और एल्डोरेट के थियेटर क्लब हैं। इन सबका उद्देश्य केन्या मेंग ब्रिटिश, अंग्रेजी भाषा के नाटकों का प्रचार करना था। केन्या में संस्कृति के क्षेत्र में ब्रिटिश साम्राज्यवादी आक्रमण 1950 के दशक में बहुत सोच-समझकर उसी समय शुरू किया गया जब राष्ट्रीय स्वाधीनता के लिए माउ-माउ युद्ध छिड़ चुका था। वह आक्रमण आज भी बदस्तूर जारी है।

अगर आपको कोई संदेह हो तो आप केन्या का किसी भी दिन का कोई भी समाचारपत्र उठाकर उसके मनोरंजन वाले पृष्ठ पर निगाह डालें, आप पाएंगे कि आजादी के पूरे 17 वर्षों बाद भी केन्या के तथाकथित राष्ट्रीय थियेटर द्वारा क्या दिखाया जा रहा है और 1952 में इसकी स्थापना के समय से ही किस तरह इस पर विदेशी ग्रुपों का नियंत्रण है। आप देखेंगे कि विदेशियों के कृत्यों को महिमामंडित करने वाले विदेशी नाटकों की भरमार है। 'ओकलोहोमा', 'दि बार्टर्ड ब्राइड', 'दि किंग एंड आई', 'व्हाई नॉट स्टे फॉर ब्रेकफास्ट?' तथा ऐसे ही अनेक नाटक आपको देखने को मिल जाएंगे। इन नाटकों का केन्या की जनता के संघर्ष से क्या मतलब? लेकिन मतलब है। क्योंकि ये नाटक केन्या की राष्ट्रीय संस्कृतियों का दमन करने वाली साम्राज्यवादी संस्कृति के ही अंग हैं। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि अभी 1975 में ही अन्नाबेल माले को ब्रिटिश साम्राज्य का सदस्य (मेंबर ऑफ द ब्रिटिश एंपायर) इसलिए बनाया गया क्योंकि उसने 1948 से केन्या में ब्रिटिश थिएटर को प्रोत्साहित किया था। इसके अलावा आप चाहें तो उन्हीं पन्नों में कुछ नस्लवाद विदेशी आलोचकों की नाट्य-समीक्षाएं पढ़ सकते हैं जिनमें देदान किमाथी जैसे केन्याई देशभक्तों को आतंकवादी कहा जाता है और उन नाटकों की भूरि-भूरि प्रशंसा की जाती है। इस तरह के आलोचकों के लिए ऐसा कोई भी नाटक, जिसमें औपनिवेशिक दमन के बारे में कुछ भी नहीं कहा जाता, अच्छा नाटक है। अगर कोई नाटक साम्राज्यवाद-विरोधी है तो उसे ये लोग बुरा नाटक मानते हैं। क्या आप सोचते हैं कि यह सारा कुछ आकस्मिक है? जी नहीं। यह केन्या की जनता के दिल और दिमाग के खिलाफ सोच-समझकर तैयार की गई जबर्दस्त सांस्कृतिक सैनिक रणनीति है।

जिस समय देश के अंदर अंग्रेजी भाषा को प्रोत्साहित और इस भाषा के माध्यम से व्यक्त बुर्जुआ संस्कृति को प्रचारित किया जा रहा था, उसी समय केन्या की राष्ट्रीय भाषाओं को बड़ी तेजी से हतोत्साहित किया जा रहा था और यहां की प्रगतिशील संस्कृति का निर्ममता से दमन किया जा रहा था।

उपरोक्त पर्चे में डा. करेगा मुताही ने यह भी बताया था कि चाहे औपनिवेशिक शासन का दौर हो अथवा आजादी के बाद का, अफ्रीकी भाषाओं के लिए घड़ियाले आंसू बहाने के अलावा कभी कुछ नहीं किया गया। इनमें से कुछ में तो कभी लेखन भी नहीं हुआ। 1900 से 1963 के औपनिवेशिक शासन के दौरान इनमें से कुछ भाषाओं को प्राथमिक शिक्षा केंद्रों में शुरु में चार वर्षों तक पढ़ाया गया ताकि मिशनरियों की जरूरतें पूरा हो सकें : लोग बाइबिल पढ़ सकें और औपनिवेशिक शासकों के निर्देश पढ़ सकें। लेकिन आजादी के बाद अंग्रेजी दां बुर्जुआ वर्ग द्वारा, जिसने ब्रिटिश साम्राज्यवादी बुर्जुआ से सत्ता प्राप्त की थी, अफ्रीकी भाषाओं का यह छोटा-सा अधिकार भी समाप्त कर दिया गया।

पुनः केन्या में 1909 से 1940 के बीच किस्वाहिली का विषय के रूप में और शिक्षा के माध्यम के रूप में भी व्यापक इस्तेमाल किया जाता था। लेकिन 1940 के बाद केन्या के समूचे मजदूर वर्ग की भाषा और राष्ट्रीय भाषा किस्वाहिली को सभी ग्रामीण विद्यालयों से निकाल बाहर किया गया।' (मुताही)

औपनिवेशिक शासन के दौरान और औपनिवेशिक शासन समाप्त होने के बाद की अवधि में केन्या की भाषाओं का दमन और विभिन्न राष्ट्रीयताओं की संस्कृतियों का दमन साथ-साथ चला। मिसाल के तौर पर सेंट्रल प्राविंस में नृत्य, गीत और कविता के सांस्कृतिक समारोह 'इतुइका' एवं वाद्य संगीत पर प्रतिबंध लगा दिया गया दृष्टव्य है कि ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के दौरान जिन कविताओं और गीतों पर प्रतिबंध लगाया गया था उन सबकी रचना केन्याई भाषाओं में हुई थी। इनमें से कुछ प्रमुख उदाहरण थे—1930 के दशक में 'मुधीरीगू' गीत-नृत्य और 1950 के दशक में माउ-माउ देशभक्तिपूर्ण साहित्य। केन्याई भाषाओं में छपने वाले तथा केन्या-समर्थक देशभक्तिपूर्ण समाचार प्रकाशित करने वाले मुमेनयेरेरी जैसे अखबारों पर प्रतिबंध लगा दिया गया। जोमो केन्याटा की पुस्तक 'केन्या बुरवी वान्गुई' जैसी पुस्तकें, जो केन्याई भाषाओं में लिखी गई थीं, और जो सीधे-सीधे केन्याई किसानों और मजदूरों के बीच पहुंची थीं, प्रतिबंधित कर दी गई। दूसरे शब्दों में कहें तो केन्याई भाषाओं में हर तरह के प्रगतिशील साम्राज्यवाद विरोधी साहित्य को, चाहे वह मौखिक हो अथवा लिखित, हमेशा प्रतिबंधित किया गया। आजादी के बाद का जो सांस्कृतिक परिदृश्य हमें देखने को मिला उसकी सबसे दुखद घटना यह है कि ब्रिटिश उपनिवेशवादियों के उपरोक्त रास्ते पर चलते हुए ही केन्या की स्वाधीन राष्ट्रीय सरकार ने जिस रचना पर प्रतिबंध लगाया वह केन्याई भाषा में लिया गया सबसे पहला अत्यंत महत्वपूर्ण आधुनिक नाटक था। मेरा आशय उस घटना से है जिसमें केन्याई सरकार ने नवंबर 1977 में लिमरू के किसानों और मजदूरों को न्गुगी बा ध्यांगो तथा न्गुगी वामिरी लिखित नाटक 'न्गाहिका न्दींदा, का मंचन कामिरीधू सामुदायिक शिक्षा और सांस्कृतिक केंद्र को बाद में गिरफ्तार कर लिया था। जुलाई 1979 में रिआरा सेकेंड्री स्कूल, कियांबू की छात्राओं ने

गिकुयू भाषा में एक नाटक लिखा और मंचित किया जिसके शीर्षक का अंग्रेजी अनुवाद है व्हाइट ए वर्ल्ड। इसमें एक बागान मजदूर की दुर्दशा का चित्रण है जिसे महज 300 शिलिंग प्रतिमाह में गुजारा करना पड़ता है। इस स्कूल पर खुफिया पुलिस ने छापा मारा और वहां की इंचार्ज अध्यापिका से गहन पूछताछ की। जहां तक मेरी जानकारी है, अंग्रेजी अथवा किसी विदेशी भाषा की एक भी पुस्तक, नाट्यरचना अथवा कविता को, चाहे वह कितनी ही नस्लवादी और साम्राज्यवादी क्यों न हो, केन्या में आने से नहीं रोका गया है।

आज जिस समय दलाल सत्ताधारी वर्ग केन्या की भाषाओं और केन्या के देशभक्तिपूर्ण थिएटर का दमन करने पर आमादा है, साम्राज्यवादी देशों के दूतावासों ने अपने विदेशी भाषा कार्यक्रम और विदेशी भाषा के थिएटर एवं सिनेमा कार्यक्रम तेजी से बढ़ाए है। साथ ही वे अपने तकनीकी सहायता कार्यक्रम के तहत केन्या को विदेशी भाषा पढ़ाने वाले अध्यापकों की 'मुफ्त' सेवाएं दे रहे हैं ताकि वे केन्या के स्कूलों और कॉलेजों में विदेशी भाषा पा सके। यहां तक कि ब्राजील ने भी ब्राजील पुर्तगाली भाषा 'निःशुल्क' पढ़ाने के लिए एक प्रोफेसर 'डोनेट' किया है।

इस प्रकार अपनी पसंद चुनते समय केन्याई लेखकों का यह याद रखना चाहिए कि कोई भी विदेशी कभी भी हमारी भाषा, हमारे साहित्य या हमारे थियेटर को विकसित नहीं कर सकता। इसी प्रकार हम भी उधार ली हुई जबान और दूसरे की नकल करके अपने साहित्य और संस्कृति को विकसित नहीं कर सकते।

अपनी भाषा, अपनी संस्कृति और अपनी जनता के वीरतापूर्ण इतिहास की जड़ों में जाकर ही हम एक ऐसी देशभक्तिपूर्ण राष्ट्रीय संस्कृति और साहित्य की रचना कर सकते है, जो अनेक विदेशियों के मन में ईर्ष्या और देशवासियों के मन में गर्व की भावना पैदा करें।

□

मंत्री महोदय

पी. वी. नरसिंहराव

"एक और सज्जन थे जिनके दामाद ने हाल ही में बी.ए. पास किया था, उसी श्रेणी में जिसमें गांधी जी रेलयात्रा किया करते थे। ससुरजी का अनुरोध था कि मंत्रीजी सिफारिश करके उस गांधी मार्गानुयायी स्नातक दामाद को एक गजेटेड नौकरी फौरन दिलावें।"

क्या बताएं साहब! घोर कलिकाल आया है, घोर कलिकाल! मिनिस्टर साहब हमें नियम सुनाने लगे हैं। शैतान भगवद्गीता का पाठ करने लगा है ... आप ही बताइए भाई साहब, मैंने इन मंत्री महोदय के लिए क्या-क्या नहीं किया? चुनाव में रात-दिन एक एक करके वोट ले आया। पचास जोड़ी बैलों से इनका जुलूस निकाला। घोड़ा निशान वाले उम्मीदवार ने दस हजार का पेशकश किया था, सो ठुकरा दिया। खालिस जान भाई साईकिल मार्क उम्मीदवार को भी हरा कर बिरादरी में अपनी नाक कटवाई। ... और अब ... अब हमारे मंत्री महोदय आराम कुर्सी पर बैठे नियमों की रट लगा रहे हैं। रूल्स एंड रेग्युलेशन्स का जप कर रहे हैं। ... वाह रे कलियुग! कैसी कृतघ्नता है! कैसी बेईमानी है। ... अच्छा, मैं भी देखूंगा, यह मिनिस्ट्री कब तक टिकती है। चुनाव-क्षेत्र में कदम रखें तो सही, मंत्री महोदय, काली झंडियों और सड़े अंडों से सम्मान न कराया तो मेरा नाम नहीं ...।

धुआंधार भाषण चल रहा था उन महाशय का। चमचमाती रेशमी कुरता 303 बंदूकें जैसी नुकीली गांधी टोपी, मूल्यवान चश्मा, कलाई में रोलेक्स घड़ी, ऊंचा पूरा डील डौल, हाथ में अंग्रेजी अखबार उल्टा पकड़े हुए—देश भक्ति का साक्षात् अवतार लग रहे थे। कितने एहसान किए थे उन्होंने भारत माता पर। सचिवालय के एक भीड़ भरे बरामदे में वे गरज रहे थे, मिनिस्टर—मेकर मिनिस्टर पर, जैसे भगवान अपनी सृष्टि पर क्रुद्ध हो रहे हों।

उन महाशय के संमुख पहुंचते ही मैं सहम गया। मैं उनसे परिचित था, आरपार

परिचित था। बड़े असरवाले थे, एक-एक चुनाव के बाद उनकी फीस (अकेले की) आय ऐसी अद्भुत गति मे बढ़ी थी, मानों भारत के नये पैसे का अमरीकी डॉलर में कायाकल्प हुआ हो। एकदम सेल्फमेड सज्जन थे, सोलहों आने स्वनिर्मित। वोट लाने की अपेक्षा हरिजन, गिरिजन आदि अविश्वसनीय वर्गों के वोट रोके रखने की कला में अत्यंत निपुण थे, कभी नरमी से करते थे, कभी गरमी से और अक्सर ऐसे स्वयंसेवकों के माध्यम से, जिन्हें दुश्मन लोग "गुंडे" कहते है।

उनका यह भाषण मंत्री महोदय के दफ्तर के पास ही चल रहा था और पार्टीशन की परली ओर बैठे हुए मंत्री महोदय के कन्जम्पशन के लिए ही प्रायः उद्दिष्ट था।

मैंने नेता महोदय को नमस्कार किया। फिर कुछ देर उनके भाषण प्रवाह में डुबकी लगा कर सकुचाता-सकुचाता बोला, "पर लालाजी, मंत्री महोदय कर ही क्या सकते हैं? नियम के अनुसार जो नहीं हो सकता, सो नहीं हो सकता।"

बस, फिर क्या था? उनके क्रोध की ज्वालामुखी लावा मुझ पर बह निकला। झल्लाकर बोले, "मिस्टर! किसे सिखा रहे हो नियमावली? मैं भी जानता हूं नियमों के पहाड़े पढ़ना, समझे? नियम के अनुसार तो वहां का इन्सपेक्टर भी काम कर सकता है; क्लर्क कर मकता है मंडल की अध्यक्षा है, और मेरी पत्नी सेक्रेटरी है। भाई साहब, जरा गौर से सुन लीजिए। जब कोई काम कमबख्त नियम में नहीं बैठता तभी हम इन मंत्री महानुभाव की शरण में आते हैं। नियम की ही बात करनी हो तो ये मिनिस्टर किस मर्ज की दवा हैं? ... खैर। अब पछताने से क्या होता है? महान् त्याग करके, अपना बहुत बड़ा घाटा करके मैंने इनका सपोर्ट किया—सपने मे भी न सोचा था कि महाशय नियमों के तोते साबित होंगे। बड़ी भूल हुई, तौबा करता हूं। ..."

नेताजी से बिदा होकर मैं मंत्री महोदय के दफ्तर में पहुंचा। बाहर वाले कमरे में पंद्रह-बीस निठल्ले बैठे टूटे कपों में मैली तश्तरियों में चाय भर कर चुस्कियां लेते हुए ऐसी आवाजें कर रहे थे जैसे "ग्रीस" न लगे हुए बिजली के पंखे कराह रहे हों। दीवारों पर पान के पीक से बने नाना प्रकार के अधिवास्तविक (सर रियालिस्ट) चित्र विद्यमान थे। बड़े "होमली" दृश्य लगता था।

मैंने अपना परिचय दिया कि मंत्री महोदय का पुराना स्वाध्यायी मित्र हूं। खबर भेजते ही मुझे भीतर बुलाया गया। मंत्री महोदय के कमरे में पहुंचते-पहुंचते मेरे सीने की धड़कन कुछ बढ़ गई। न जाने क्यों?

मंत्री महोदय बड़े तपाक से मिले; पर उन्हें देखते ही पहचानने में मुझे कुछ कठिनाई हुई। पांच बरस बाद मैं उन्हें देख रहा था, पर पच्चीस बरस की आयुवृद्धि के बोझ से उनका मुख शिथिल लग रहा था। काया में मोटापा अवश्य आ गया था, पर उससे हृष्ट-पुष्टता नहीं, अस्वस्थता ही झलकती थी। उस गंभीर और चिंतित पदाधिकारी के चेहरे से मेरा पुराना

साथी हंसमुख और अल्हड़ साथी, झांकने की चेष्टा कर रहा था, पर उसे सफलता कम ही मिल रही थी। मैं कुछ उदास हुआ।

एक और सज्जन मंत्री महोदय से बहस कर रहे थे, "सुनिए साहब, अगर उस इंस्पेक्टर के बच्चे को फौरन न हटाया गया तो हमारे गुट की खैर नहीं। मैं सच कहता हूं, वह हमारा अंत देखेगा।"

मंत्री बोले, "पर शर्मा जी, उसे आए हुए एक महीना ही तो हुआ है? कैसे करें उसका ट्रांसफर?"

"वही तो कहता हूं सरकार! उस हरामजादे को हटवा देंगे तो फिर आने वाला हमारा गुट से बा-अदब बामुलाहिजा पेश आया करेगा।"

मंत्री जी कुछ खट्टी सूरत बना कर बोले, "लेकिन ट्रांसफर मैं कहां करता हूं? वह तो कलेक्टर करता है।"

"जी हां, जानता हूं इसीलिए उठाइए टेलीफोन और ट्रंककाल कर दीजिए कलेक्टर को ...।"

मंत्री जी कुछ आनाकानी करने लगे। पर उनकी आवाज क्षीण थी, भयभीत लगती थी।

एक और सज्जन थे जिनके दामाद ने हाल ही में बी.ए. पास किया था, उसी श्रेणी में जिसमे गांधी जी रेलयात्रा किया करते थे। ससुरजी का अनुरोध था कि मंत्रीजी सिफारिश करके उस गांधी मार्गानुयायी स्नातक दामाद को एक गजेटेड नौकरी फौरन दिलावें।

परंतु मंत्री जी कुछ मस्त स्वर में बोले, "यह क्या कहते हैं राव साहब? वहां तो फस्ट क्लास को कोई पूछता नहीं है, सो आपके दामाद को क्या आशा हो सकती है?"

राव साहब तुनक कर बोले, "मैं वह सब नहीं जानता। यह पोस्ट मेरे दामाद को मिलना ही चाहिए। कैसे दिलाइएगा, सो आप जानें।"

तीसरे सज्जन की फर्माइश थी कि उनके चिरंजीव को—जो चालीस प्रतिशत अंकों से पी.यू.सी. पास कर चुका था—इंजीनियरिंग कॉलेज में सीट चाहिए। मंत्री महोदय ने कहा कि नब्बे प्रतिशत पाने वालों को भी सीट नहीं मिलती। पर वे सज्जन कहां टलने को थे? कहने लगे, "मेरा लड़का नब्बे प्रतिशत अंक पाता तो मैं आपको क्यों कष्ट देता?"

चौथे सज्जन कुछ मांगने नहीं आए थे। केवल यह कह रहे थे। "वाह-वाह साहब! क्या कहूं, भगवान कसम। रामनगर में आपका यह भाषण, समाजवाद का वह अद्‌भुत स्पष्टीकरण, अहाहा। शहर भर में आज तक आप ही की चर्चा हो रही है सच मानिए। ..."

मंत्री जी बोले, "पर ठाकुर साहब। मैं तो रामनगर गया ही नहीं। आखरी वक्त पर मेरा प्रोग्राम केंसिल हो गया था। किसी अखबार में तो नहीं छपा मेरा भाषण?"

ठाकुर के चेहरे का रंग फक हो गया, पर केवल एक क्षण के लिए। दूसरे ही क्षण उनकी बकबक दुगने वेग से चल पड़ी।

इतने में एक विचित्र सज्जन ने कमरे में प्रवेश किया। उनके लगातार संभाषण में कोई विरामचिह्न या अर्ध विरामचिह्न न था। हाथ में इतना बड़ा हार ले आए थे कि शहर में फूलों का अकाल ही पड़ा होगा। उनकी समूची बड़बड़ का अर्थ इतना ही था कि एक फाइल जिसमें वे पर्सनल इन्टरेस्ट रखते हैं, मंत्री महोदय की मेज पर आज चार बज कर अड़तालीस मिनट पर आने वाला है। चपरासी से लेकर सचिव तक सभी लोग उनके पक्ष में हैं। अतएव मिनिस्टर साहब फाइल पढ़ने का भी कष्ट न करते हुए उस पर अपने हस्ताक्षर फर्मा दे तो "बंदे का बेड़ा पार लग जाएगा।"

... बिना फुलस्टाप कामा के यह सब सुनाकर वे सज्जन चले गए। उनका आगमन आंधी जैसा था और प्रस्थान तूफान जैसा।

फिर कई और लोग आए, उद्घाटनों के लिए, फीता काटने के लिए, एक पान की दुकान के "सुपर सेल्स" का प्रारंभ करने के लिए। कई लोगों ने कहा कि विरोधी गुट वालों ने अपने समारोह के लिए किसी और मंत्री को बुक कर लिया है, सो आपको चलना ही होगा। मंत्री बनाम मंत्री, यही उनका नियम था।

पांच बज गए। मंत्री महोदय को किसी समारोह में अध्यक्षता करने जाना था। वे मुझे भी वहां घसीट ले गए। तीन-चार घंटे तक लगातार भाषण चलते रहे, कई लोगों के, कई भाषणों में, कई प्रकार के। अंत में किसने क्या कहा और क्यों कहा, यह कोई बता नहीं सकता था। पर अफसरों ने मंत्री महोदय को उस सक्सेसफुल फंक्शन पर बधाई दी।

रात के ग्यारह बजे मंत्री महोदय और मैं लगभग अधमरी दशा में, घर लौटे। उनसे बिदा होते समय मैंने पूछा, "इस व्यस्तता का कोई पारावार नहीं दीखता। जरा बताइए तो, देश के गंभीर प्रश्नों पर सोचने का आप को समय कब मिलता है?" मंत्री महोदय ने क्षीण हास्य किया और बोले, "तुम क्यों सोचते हो कि मैं सोचता भी हूं?" □

(श्री वेमूरि राधा कृष्ण मूर्ति के ग्रंथ "भारत के प्रधानमंत्री श्री पी.वी. नरसिहराव" से साभार)

तीन व्यक्तित्व : चार मुलाकातें

रामधारी सिंह 'दिनकर'

अनेक बार अतीत के क्षणों के बीच से गुजरना एक नई ऊर्जा भर देता है। बीता हुआ अतीत जैसे-जैसे अपनी परतें खोलता है वैसे-वैसे ध्वनित होता वर्तमान अपनी प्रासंगिकता के साथ सामने आ जाता है। रामधारी सिंह 'दिनकर' की जवाहरलाल नेहरू, राधाकृष्णन तथा बाबू राजेंद्र प्रसाद से प्रस्तुत चार मुलाकातें हमारे वैचारिक तंतुओं के तार छेड़ देती हैं। इनमें परशुराम की प्रतीक्षा की रचना-भूमि की चर्चा है तथा साहित्यकार किन अर्थों में देश के कर्णधारों को सलाह देने में सक्षम है, ये दृष्टिकोण भी है। 'दिनकर' मात्र साहित्य सृजन करने वाले रचनाकार ही नहीं थे अपितु देश की समस्याओं पर राजनेताओं से बेबाक चर्चा करने वाले चिंतक भी थे। आज भी 'कुरूक्षेत्र' और 'परशुराम की प्रतीक्षा' पढ़कर रोमांच हो जाता है।

पंडित जी मेरा स्वागत करने को दरवाजे पर आए। बोले, "आओ भाई महाकवि" और गले में उन्होंने हाथ डाल दिया। मैं बोला, "पंडित जी, मैंने जिस काम के लिए समय लिया था, वह काम अब नहीं रहा। कबीर साहब (हुमायूं कबीर, शिक्षा मंत्री) की इच्छा कि पी. ई . एन. के जलसे के लिए मैं मनीला जाऊं। मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं है, इसलिए मैं जाना चाहता था। लेकिन कबीर साहब ने कहा कि अभी हम लोगों को बाहर जाना चाहिए। चीनी युद्ध को लेकर भ्रांतियां फैलाई जा रही हैं। अपनी बातें, दुनियावालों से हमें कहनी चाहिए। इस उपदेयता को मैंने कबूल किया था और जाने को मैं तैयार हो गया था। इसलिए, आपसे मिलना जरूरी समझा। मगर, कल अफसरों से जो कुछ गुना, उससे मेरा उत्साह ठंडा हो गया और मैंने नाही कर दी है। ट्रिप मुझे इज्जत से काम मालूम होता है।"

''क्यों?''

''इसलिए कि फैसेज मनी देगा एशियाटिक फाउंडेशन और बोर्ड तथा लाजिंग फिलिपिनों देंगे। मगर पाकेट मनी का इन्तजाम नहीं है। अपनी सरकार तो रुपये ले जाने नहीं देती। सिर्फ 75 या 60 रुपये से क्या बनता है? मगर आ गया तो पाकिस्तान के बारे में अपना विचार कह देता हूं।''

पंडित जी ने कहा, ''बोलो।''

मैंने कहा, ''कि इंग्लैण्ड और अमरीका चाह रहे हैं कि वैली देकर हम पाकिस्तान ही से मेल कर लें। अगर वैली चली जाती है, तो लद्दाख के लिए लड़ने के मानी क्या रह जाते हैं?''

पंडित जी ने कहा, ''लड़ने के मानी के कोई मानी नहीं, हम लड़ने को लद्दाख पहुंचेंगे कैसे? वैली के बिना लद्दाख पहुंचना ही मुहाल है।''

मैंने कहा, ''एक बात और है। अगर पाकिस्तान उदारता से काम लेता, इस आड़े वक्त बिना शर्त हमारा साथ देता, तो उसका असर हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के इतिहास पर अच्छा पड़ता। तब शायद, हिन्दू-मुस्लिम-एकता की भी राह निकल आती। मगर पाकिस्तान जिस हालत में अपनी मांग को तेज कर रहा है, वह खतरनाक है। अगर हम मांग को कबूल कर लेते हैं, तो भारत में हिंदू और मुसलमान का सम्बंध और भी खराब हो जाएगा। अभी तो खैर यह भी उम्मीद है कि हम नहीं, तो हमारे पोते दोनों देशों के करीब लाने में कामयाब हो जायेंगे और हिंदु-मुस्लिम समस्या का भी कोई समाधान निकल आयेगा। लेकिन अभी कोई गड़बड़ी हो गयी, तो हिंदुओं का घाव और भी गहरा हो जाएगा और भारत सरकार हास्यास्पद स्थिति में पहुंच जाएगी।''

पंडित जी बोले, ''भाई, जब अमरीका और ब्रिटेन वालों ने हमसे यह कहा कि बातें कीजिए, तब हमने यह कहा कि बातें करने को हम हमेशा तैयार हैं। लेकिन, उसका एक नतीजा यह भी हो सकता है कि रिश्ते और भी खराब हो जाएं। पाकिस्तान के अखबार बहुत खराब लिखते हैं। उर्दू अखबार 'जंग' सबसे कठोर बातें बोलता है। मगर आवाम की राय अलग है। हमारे डिपुटी हाई कमिश्नर कहते थे कि वहां के आवाम यानी पान वाले, टैक्सी वाले, तांगे वाले आज हमारे वास्ते ज्यादा मुहब्बत रखते, पहले से ज्यादा हमदर्दी और नरमी से बातें करते हैं। वैली देकर समझौता करने की बात मैं नहीं सोचता।''

मैंने कहा, ''असम में हिंदू बेतरह डरे हुए हैं। उन्हें भय है कि अबकी अगर चीनी फौज आई, तो उत्तरी असम नेफा में मिला लिया जाएगा और दक्षिणी असम पाकिस्तान में। प्रसोपा के श्री गंगाशरण सिंह असम गए थे। उन्होंने भी यही बात सुनी है।''

पंडित जी जोश में आ गए। मेज पर मुक्के पटक-पटक कर कहने लगे, ''ये लोग बड़े कमजोर हैं। मंच से लंबे-लंबे भाषण देते हैं। मगर, लड़ने के नाम से डरते हैं। हम हर मुसीबत से लड़ेंगे। हम हारने पर भी लड़ना नहीं छोड़ेंगे। पाकिस्तान से भी अभी हम

कमजोर हैं। पाकिस्तान के पास ज्यादा हथियार हैं। मगर आन पड़ी, तो हम लड़ने के सिवा और क्या कर सकते हैं? मैं लड़ूंगा।''

मैंने कहा, ''पंडित जी, सारे देश में केवल राजा जी ही ऐसे व्यक्ति हैं, जिन्हें आक्रमण की चिंता नहीं है। लगता है, उन्हें महसूस नहीं होता कि देश पर हमला हुआ है। ऐसा ठंडा आदमी मैंने और नहीं देखा। आज भी उनकी आंखों के सामने केवल आप हैं, चीन और पाकिस्तान नहीं। वे आज भी भारत पाकिस्तान के बीच सम्मिलित डीफेंस की बात करते हैं। पता नहीं, उनके मन में क्या है।''

पंडित जी बोले, ''अभी हाल में वे आए हुए हैं और मुझसे कुछ कह रहे थे कि अमरीका के सुपुर्द हो जाओ और कहो कि वह चीन से हमारी रक्षा करे फिर राजा जी बोले, यह क्या बात है कि तुम डिप्रेस्ट नहीं हो? मैंने कहा, डिप्रेसन से लाभ क्या होगा? मैं होशो-हवास के साथ इस मुसीबत का सामना कर रहा हूं।

पंडित जी ने कहा ''राजा जी की चिंताधारा यह है कि हम कमजोर हैं, इसलिए किसी ताकतवर पहलवान को बुलाकर अपनी रक्षा की जिम्मेदारी उसके हाथ में सौंप देनी चाहिए।''

मैंने पूछा, ''पंडित जी, कई रात तो आप सोये नहीं होंगे।''

पंडित जी ने कहा, ''तुम मानोगे? मैं किसी रात भी नहीं जगा हूं। चिंता अपनी जगह पर है, नींद अपने समय पर ठीक आती है। मैं ठीक सोता हूं।''

फिर प्रेस की बातें चलीं। अखबार सरकार को सहानुभूति न देकर उसकी आलोचना कर रहे हैं। मैंने कहा, रामनाथ जी से मैंने पूछा था कि यह सब क्या हो रहा है। उन्होंने कहा, ''कल से देखो। सारी बातें ठीक हो जायेंगी।'' तब से मैं देख रहा हूं कि बातें कुछ खास खराब नहीं हैं।

पंडित जी बोले, ''तुमसे और त्यागी से रामनाथ जी यह कहते हैं, मगर सभी बातें ठीक कहां हुई हैं? प्राइम मिनिस्टर की आलोचना जरूर कम है, लेकिन नीतियों की आलोचना चल रही है।''

मैंने कहा, ''केवल लड़ाई में ही हम नहीं हारे, डिपलोमेसी में भी हम हार गए हैं।''

पंडित जी बोले, ''कैसे?''

मैंने कहा, ''हमारे पड़ोसी देश यह मानते ही नहीं कि चीन ने आक्रमण किया है। आखिर चीनी लड़ाई के दौरान राजदूत करते क्या रहे हैं? ईजिप्ट में यह साफ दीखता है। कोलंबो में मुझे यह साफ दिखाई पड़ता है।''

पंडित जी ने कहा, ''कोलंबो में केवल यू. ए. आर. ने हमारी मदद करने की कोशिश की। बाकी लोग डरे हुए हैं। कुछ बात यह भी है कि बाहर वालों का यह ख्याल है कि चीन का मुद्दमा बहुत कमजोर नहीं। लंदन का टाइम्स प्रो-कम्युनिस्ट नहीं है। लेकिन वह भी जब केस जांचता है, तब यह भाव जता देता है कि चीन का पक्ष भी बिल्कुल कमजोर

नहीं है। केवल अपने देश के लोग यह नहीं मानते।''

मैंने कहा, ''1959 में जब आपने कहा था, ''नाट ए ब्लेज आव ग्राम ग्रोज देयर'' तब आप इस मूड में थे कि समझौता हो जाय। विरोधियों की उपेक्षा करके अगर उस समय आपने समझौता कर लिया होता, तो वह आज से ज्यादा अच्छा रहता। आज तो हम पराजित हैं, चीन विजयी है।''

पंडित जी इस पर कुछ नहीं बोले।

मैंने कहा, ''आज तो ख्रुश्चेव ने गंगा नहा लिया पंडित जी।''

पंडित जी बोले, ''कैसे?''

मैंने कहा, ''इस प्रकार कि उन्होंने यह बात साफ कर दी कि वाणी से वे हमारी पीठ सहलाते रहेंगे, लेकिन, कर्म, से वे चीन के साथ रहेंगे। चीन उनका भाई है, भारत फकत दोस्त है।''

पंडित जी ने कहा, ''तुमने गलत समझा है।''

मैंने कहा, ''सारा देश वही समझेगा, जो मेरी समझ में आता है।''

पंडित जी बोले, ''तुम्हें एक खुफिया बात बतलाता हूं। अभी तीन-चार दिन पहले ख्रुश्चेव ने अपने राजदूत के जरिए मुझे गुप्त संदेश भेजा है। उसमें उन्होंने हमारे देश के लिए हमदर्दी दिखाई है और कहा है कि मेरी नीति उन्हें सोलह आने पसंद है। उन्होंने यह भी क़हा कि रूस भारत की मदद करने से मुकरेगा नहीं। उसने जो वायदे किए हैं, सब पूरे किए जायेंगे। और भी बहुत-सी बातें हैं।''

''मैंने कहा, ''यह सुनकर मेरा मन आश्वस्त होता है। अब रूस के वक्तव्यों को मैं सही अर्थों में समझा करूंगा। मगर देश को तो यह गुप्त आश्वासन मालूम नहीं है।''

तब मैंने सूचना-प्रसारण मंत्रालय की बातें शुरू कीं। मैंने कहा, ''यह मंत्रालय अत्यंत कमजोर निकला। रेडियो को तो अफसरों ने अपनी सूझ-बूझ से भर रखा है। लेकिन, इनफार्मेशन का पक्ष बिल्कुल शून्य रहा है। हिंदी का आंदोलन चलाने के कारण रेड्डी साहब हम लोगों से अच्छा ताल्लुक नहीं रखते हैं। तब भी, एक दिन उनसे भेंट होने पर मैंने कहा, सीजफायर के बाद रेडियो की ट्यून में थोड़ी तब्दीली होनी चाहिए थी, तो नहीं हुई है। सीजफायर धोखा भी हो सकता है। मगर वह उदारता की कूटनीति भी हो सकती है। अगर शांति की बातें आ रही हों, तो अच्छा होगा कि हम एकाध सुर ऐसा भी दें, जिससे यह विदित हो कि हम शांति के विरोधी नहीं हैं। रेड्डी साहब से कहा, दिनकर, सीजफायर के बाद से कोई हिदायत इस किस्म की नहीं आई है। मैंने कहा, आप कैबिनेट मिनिस्टर हैं। हिदायत देना आपका काम है।''

पंडित जी बोले, ''इधर तो कुछ सुधार हुआ है। चेलापति राव वगैरह से सहयोग लिया जा रहा है।''

मैंने कहा, "कोई तरक्की नहीं है। मुझे पता चला है कि चेलापति राव रेडियो से नाराज है और उनका कोई लेख भी इलस्ट्रेड वीकली में छपने आया है। वैसा ही एक लेख श्री जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी ने लिखा है। चतुर्वेदी जी ने यह लेख मुझे सुनाया था। मैंने कहा, अगर लेख छपवा ही रहे हैं, तो उसकी एक-एक कॉपी पंडित जी और रेड्डी साहब को भी दे दीजिए।"

पंडित जी फिर भी चुप ही रहे। मैंने और भी कहा कि हिंदी के समर्थकों से सूचना-प्रसारण मंत्रालय शत्रुता का व्यवहार कर रहा है। 15 अगस्त को रेडियो पर मुशायरा हुआ, कवि-सम्मेलन नहीं। अभी हाल में रेडियो पर जो कवि-सम्मेलन हुआ, उसमें न रेड्डी आए, न शामनाथ। ये लक्षण अच्छे नहीं हैं।"

पंडित जी बोले, "कवि-सम्मेलन में तो मैं भी नहीं गया।"

मैंने कहा, "आप रेडियो कवि सम्मेलन के लिए नहीं बुलाए गए थे। आप वीर रस कवि सम्मेलन में जाने वाले थे।"

समय काफी हो जाने से मैं उठ गया। पंडित जी मुझे छोड़ने को दरवाजे तक साथ आए और बोले, "तुम रेडियो पर क्यों नहीं गरजते हो? खूब गरजो।" मैं हंसते-हंसते कह गया, "मैं अगर जोर से गरजूंगा तो यह खड़ा हुआ रेडियो फट जायेगा।"

दो बातें मैंने खासतौर से नोट कीं। मैंने एक मंत्रालय की बात का आरंभ यह कहकर किया था कि आप जैसे एक तगड़ा सुरक्षा मंत्री ले आए हैं, वैसे ही अमुक मंत्रालय के लिए एक और तगड़ा मिनिस्टिर ले आइये। पंडित जी ने आंखें नीचे कर लीं और "हूं" वे इस तर्ज पर बोले कि उसे मैंने तगड़ा डिफेंस मिनिस्टर पर व्यंग्य समझा। दूसरी भयानक बात उन्होंने यह कही कि "तुम देखोगे कि मेरे बाद तुम्हारे देश में प्रजातंत्र नहीं रहेगा, सैनिक शासन हो जाएगा।"

15 दिसम्बर, 1962

मैं राष्ट्रपति भवन 12 बजे दिन में पहुंचा और 1 बजे तक राष्ट्रपति के साथ रहा। राष्ट्रपति मुझे लिवाने को दरवाजे से बाहर निकले। लुंगी पहने, बदन में पूरी बांह का स्वेटर उजले रंग का, ऊपर एक उजली उनी चादर। पहले राधाकृष्णन से नंबर नामक पुस्तक पर बात चली, जिसमें मेरा भी एक लेख छपा है। जिसे मद्रास के श्री कालिदास ने प्रकाशित किया है। किताब की कॉपी पहले मेरे ही पास पहुंची थी। राष्ट्रपति ने खुद फोन करके किताब मुझसे मंगवायी थी। मैंने कहा, किताब में सामग्री अच्छी है, मगर हर पेज के बाद विज्ञापन छपा है। यह बात मुझे पसन्द नहीं आयी। राष्ट्रपति ने कहा, "और फोटोग्राफ्स भी बुहत हैं।" उनका आशय लेखकों के फोटोग्राफ से था।

मैंने पाकिस्तान की बात शुरु की, जिसकी चर्चा मैं कल पंडित जी से कर चुका था।

राष्ट्रपति बोले, ''प्रधानमंत्री को ऐसी बात नहीं बोलनी चाहिए, जिससे समझौता वार्ता में बाधा पड़े। देखा नहीं, सैनडीस को रावलपिण्डी से भागकर दिल्ली आना पड़ा, क्योंकि प्रधानमंत्री ने कोई अनुपयुक्त बात कह दी थी। मैंने सुना है, इंदिरा जी ने कहा है कि यह समझौता-वार्ता ''स्टिल बार्न चाइल्ड'' है। मैंने प्रधानमंत्री को पत्र लिखा है। आज वे मुझसे मिलने आयेंगे। मैं उनसे अनुरोध करूंगा कि अभी वे कुछ भी न बोलें।

मैंने कहा, ''आप जो कहते हैं, वह ठीक है। गलत बात बोलने से कठिनाई पैदा होती है। मगर इस समझौते का आधार क्या होगा? अगर हमें वैली देनी पड़ी, तो लद्दाख के लिए हम लड़ेंगे कैसे? मेरा मत है कि अगर वैली पाकिस्तान को चली गयी, तो हमारे देश की सेक्युलर बुनियाद ही खत्म हो जायेगी। अगर तीस लाख मुसलमानों को हिंदू साम्राज्यवाद से बचाने के लिए वैली पाकिस्तान में मिला दी जाती है, तो पांच करोड़ भारतीय मुसलमानों की रक्षा का भार किस पर होगा? और श्रीमन्, मैं आपसे कहना चाहता हूं कि यदि वैली चली गयी, तो आपकी सरकार का लोग मजाक उड़ायेंगे। जनता आपकी सरकार का आदर करना छोड़ देगी। मुमकिन है, लोग आपका करेंसी नोट लेना भी इन्कार कर दें।

राष्ट्रपति मेरी बात सुनकर जरा विचलित हुए और बोले, ''नहीं, नहीं, वैली देने की कोई बात नहीं है। हम ज्यादा से ज्यादा इस बात पर विचार कर सकते हैं कि पुंछ देकर समझौता किया जा सकता है या नहीं।''

मैंने कहा, 'सुना है, जिला मीर का भी दो बटे तीन हिस्सा पाकिस्तान के पास है। अगर पाकिस्तान चाहे, तो इस इलाके पर भी विचार किया जा सकता है। अगर समझौते का आधार ये दो जिले हों, तो समझौते के पक्ष में जनमत तैयार किया जा सकता है।''

राष्ट्रपति ने कहा, ''आग्रह अमरीका की ओर से कम, ब्रिटेन की ओर से ज्यादा है।''

मैंने पूछा, जेनरल कौल कैसे निकालें?

राष्ट्रपति ने कहा, ''जेनरल चौधरी मेरे पास आए और बोले कि मेरा एक व्यक्तिगत अनुरोध है। कृपा करके आप प्रधानमंत्री जी से अनुरोध कीजिए कि वे समस्या पर विचार करें। प्रधानमंत्री मानेकशा के प्रति अपने विरोध को कम कर दें और जेनरल कौल को छोड़ दें, तो इतने से स्थिति सुधर जाएगी। यह बात मैंने चव्हाण से कही और प्रधानमंत्री से भी। प्रधानमंत्री जी ने कहा, ''कौल अच्छे आदमी हैं। वे शराब नहीं पीते। सिविल सप्लाई के काम में उन्होंने काफी योग्यता का परिचय दिया था। लेकिन मानेकशा बिल्कुल भिन्न प्रकार के अफसर हैं।''

राष्ट्रपति बोले, ''मैंने प्रधानमंत्री को समझाया कि जेनरल कौल के भीतर वैयक्तिक गुण हो सकते हैं। मगर विचार करने का विषय यह नहीं है। विचार तो इस बात पर करना है कि सेना किसको चाहती है, जवानों का विश्वास किसमें अधिक है। इसके दो दिन बाद चव्हाण मेरे पास आए और बोले कि आर्डर मैंने पास कर दिया। आर्डर पास किए बिना मैं

आपके पास नहीं आ सकता था।''

मैंने पूछा, ''चीन के साथ अब आगे क्या करने का विचार है?''

राष्ट्रपति बोले, ''फ्रांस और जर्मनी सारे इतिहास में शत्रु रहे थे। लेकिन आज क्या हाल है? डि गाल जर्मनी की जय पुकारता है और लुबका फ्रांस की। भारत शांतिवादी देश है। सैनिक शक्ति तो अब भारत को भी बढ़ानी ही है। लेकिन शांति का रास्ता छोड़ने में कल्याण नहीं है। श्री भावो (श्री लंका की प्रधानमंत्री आ रही हैं) उस समय मैं दिल्ली रहना चाहता हूं। बाहर जाने का प्रोग्राम रद्द कर दूंगा। श्री भावो को मैं बीस वर्षों से जानता हूं। प्रधानमंत्री अभिमानी (प्राउड) मनुष्य हैं। वे ढील नहीं देंगे (विल नाट रिलेंट) न वे विनम्रता का कोई संदेश भेजेंगे। यह बात अच्छी है। आखिर वे देश के प्रधानमंत्री भी तो हैं। उन्हें तन कर रहना चाहिए। लेकिन मैं विनम्र मनुष्य हूं। श्री भावो के जरिए मैं चाऊ को यह संदेश भेजना चाहता हूं कि दोनों देशों के बीच शत्रुता को कायम रखना मूर्खता की बात है।''

मैंने कहा, ''संसद के केंद्रीय भवन में आपके लाबिंग है। लोग कहते हैं कि तेजपुर के दौरे के बाद अगर आपने यह वक्तव्य न दिया होता कि उपेक्षा (नेगलीजेंस) के कारण हमारी हार हुई है, तो प्रधानमंत्री को पराजय के कारणों की छानबीन के लिए जांच का आदेश देना नहीं पड़ता।''

राष्ट्रपति बोले, ''मैंने दो शब्दों—क्रेडूलिटी और नेगलीजेंस का प्रयोग किया था। क्रेडूलिटी के दो पक्ष हैं। प्रधानमंत्री ने मेनोन का विश्वास किया और भारत ने चीन का। मगर तेजपुर में मुझे ऐसी बहुत-सी बातें सुनने को मिलीं, जिन्हें मैंने जनता के सामने नहीं खोला है। सैनिक मेरे चरणों में यह कहते हुए गिर पड़े कि आप हमारे पिता के समान हैं और उन्होंने बहुत सी बातें मुझे बतायीं।''

मैंने निवेदन किया, ''आपके बताये बिना ही सारा देश उन बातों को जान गया है। बहुत से लोग असम गए हैं, बहुत-से सिपाही असम से वापस आए हैं। श्री गंगाशरण सिंह भी असम गए थे। क्या इनसे इधर आपकी भेंट हुई है?''

राष्ट्रपति ने हुंकारी भरी। मैंने कहा, ''तब तो टस्कर प्रोजेक्ट की पूरी कहानी आपको मालूम होगी।''

राष्ट्रपति ने फिर से शांति और सद्भावना की बात चलायी। मैंने कहा, ''श्रीमन्, आपको मालूम है कि इस चीनी आक्रमण की जवाबदेही किस पर है।''

राष्ट्रपति उत्सुक होकर, ''किस पर?''

मैंने कहा, ''गांधी पर। यदि गांधी जी का अहिंसात्मक प्रयोग असफल हो गया होता, तो देश को लाचार होकर तलवार उठानी ही पड़ती। और तब युद्ध में हमारी वह दशा नहीं होती, जो आज है। यदि देश खड़गबल से स्वाधीन हुआ होता, तो हमारी सारी

कमजोरियां, सारी कायरता उसी युद्ध में जलकर खाक हो गयी होती। जब से आप दिल्ली आए हैं, आप हमेशा नैतिक संस्कार का उपदेश देते रहे हैं। राजेंद्र बाबू भी नैतिकता पर ही जोर देते रहे। राजा जी भी नैतिक बल का ही बखान करते रहे। लेकिन इसका परिणाम क्या हुआ? जो थोड़ी सी आग हमने गांधी जी के नेतृत्व में संचित की थी, वह भी बुझ गयी। खुद मुझमें पहले जितनी आग थी, उतनी अब नहीं है। यह सब आप लोगों की संगति का प्रभाव है, ऊंची मनुष्यता प्राप्त करने की उमंग का नतीजा है। मुमकिन है, यह मेरी बढ़ती हुई उम्र का भी परिणाम हो, मगर यहां दिल्ली में हायर ह्यूमेनिटी, शांति और अहिंसा की बड़ी भारी तलाश है और आप लोग यही बात बार-बार बोलते हैं। उसका मुझ पर प्रभाव पड़ता है। मगर चीनी आक्रमण ने मेरी आंखें खोल दी हैं। यह स्पष्ट हो गया है कि शक्तिशाली शारीरिक संस्कार के बिना भारत किसी भी ध्येय को प्राप्त नहीं कर सकेगा, और तो और, काफी शारीरिक शक्ति संचित किए बिना वह बच भी सकेगा या नहीं, इसमें मुझे संदेह है। चीनी आक्रमण के बाद से मैं भारत का स्वप्न एक भिन्न देश के रूप में देखने लगा हूं। आपके शिक्षा, संस्कृति और सूचना मंत्रालयों को चाहिए कि वे एक नये मंत्र के प्रचार में लग जाएं। वह मंत्र आत्मा नहीं, शरीर के उत्थान का मंत्र है, जिससे यह देश शीघ्र से शीघ्र शरीर-बल का विकास कर सके। बुद्ध और गांधी ने जो कुछ दिया है, उसे हम फेंक नहीं देंगे, मगर केवल उसी को सिर पर लादे हुए चलते रहना अब संभव नहीं है।''

राष्ट्रपति के सामने मैं जरा जोश से ही बोल रहा था। उन्होंने मुझे टोका नहीं, बोलने दिया। अंत में वे बोले, ''इधर आप काफी जोशीली कविताएं लिख रहे हैं। एक कविता में आपने प्रधानमंत्री को सलाह दी है कि वे भैंस बनकर भैंस का मुकाबला करें। लालबहादुर शास्त्री मुझे कहते थे कि कविता लिखते-लिखते अक्सर आपको रक्तचाप बढ़ जाता है। आज मैं समझ गया कि रक्तचाप आपकों क्यों चढ़ता है। क्षणिक आवेश में आकर आप भारत की सनातन परंपरा को छोड़ने को तैयार हो गए हैं। मगर आपका यह कहना ठीक है कि भारत को अपनी सामरिक शक्ति बढ़ानी चाहिए और सामरिक शक्ति अब बढ़कर ही रहेगी।''

राष्ट्रपति राधाकृष्णन ने यह भी बताया कि आज से तीन वर्ष पूर्व राजेंद्र बाबू ने उनसे कहा था कि पंडित जी से मैं राजनीति की बात करना नहीं चाहता। राजनीति की बात करते-करते वे उबल पड़ते (फ्लेयर अप) हैं। मगर मुझे ऐसी कोई कठिनाई नहीं होती। मैं जो कुछ करता हूं, देश के लिए करता हूं, खुद नेहरु के लिए करता हूं। उन्हें समझाने का मेरा अपना तरीका है। अक्सर मैं जो कुछ चाहता हूं, उसी का प्रस्ताव नेहरू से आता है, उनकी सरकार से आता है और मैं उसे स्वीकार कर लेता हूं।''

पंडित जी ने मुझसे कहा था कि सन् 1955 ई. में जब ख्रश्चेव और बुलगानिन भारत आए थे, तब उन्होंने डाक्टर राधाकृष्णन से कहा था कि आज हमारा शत्रु जर्मनी है, मगर दस साल बाद हमारा शत्रु चीन होगा। प्रधानमंत्री ने मुझसे यह भी कहा था कि

रूमानिया के प्रधानमंत्री भी चीनियों के स्वभाव के विरूद्ध बहुत कुछ कह रहे थे। मैंने ये बातें डाक्टर राधाकृष्णन से कहीं। उन्होंने ख़ुश्चेव और बुलगानिन वाली बात की संपुष्टि की।

चलते-चलते मैंने निवेदन किया, "पंडित जी ने मुझे कल कहा था कि मेरे बाद तुम्हारे देश में प्रजातंत्र नहीं रहेगा, सैनिक शासन आ जाएगा। वह बात मैं आपके कान में डाल देता हूं। प्रधानमंत्री को चोट पहुंचाने वाली बात अब आप मत बोलिए।"

राष्ट्रपति बोले, "क्या ऐसी बात है? प्रधानमंत्री को सैनिक शासन की संभावना दिखाई पड़ने लगी है?"

8 जनवरी, 1963 (कलकत्ता)

20 दिसंबर से डायरी लिखना बंद रहा है। आज स्मृति से उल्लेखनीय घटनाओं को नोट कर रहा हूं।

22 दिसंबर, 1962 को "परशुराम की प्रतीक्षा" नामक कविता आरंभ हुई थी। चीनी आक्रमण से प्रेरित होकर कविताएं मैंने कई लिखीं, लेकिन इस कविता में देश का पूरा क्रोध समा गया है। 25 दिसंबर तक काफी पद लिखे जा चुके थे और उस दिन संध्या समय उनका पाठ मैंने प्रोफेसर नर्मदेश्वर प्रसाद और सर्चलाइट के संपादक कल्हण के घर पर किया था।

24 या 25 दिसंबर को मनोरंजन बाबू मेरे घर पर (पटना) आए थे। उन्हें जब कविता सुनायी, उनके चेहरे पर असीम उत्तेजना फैल गयी जिसमें कुछ घबराहट भी मिली हुई थी। शायद यह भाव कि दिनकर इतना दुस्साहस कैसे कर रहा।

लेकिन मैं दुस्साहस कर रहा हूं, ऐसा मुझे प्रतीत नहीं होता। कविता स्थिति के गूढ़ अंश से फूटी है, उसके मूल केंद्र से उठी है। केंद्र में जाने से स्पष्ट ज्ञात होता है कि गलती बहुत भारी हुई है। लीडरों पर लोगों का ध्यान झट से इसलिए चला जाता है, क्योंकि वे लीडर हैं। नहीं तो दोषी तो सारा देश है और इस देश में वे भी शामिल हैं, जो धराधाम से जा चुके हैं।

"परशराम की प्रतीक्षा" रोज ही लिखी जाती रही। कल तक खिली गयी है और आज उसका फाईनल प्रूफ भी मैंने पास कर दिया है। पटने में तिमंजले पर बैठ जाता था, रोता रहता था और कविता लिखता जाता था। अंग सिहरते थे, वेपथु और रोमांच होता था। एक रोज मनोरंजन जी आकर लौट गए। एक दिन ब्रह्मशंकर और सुहेल आकर लौट गए। और भी लोग लौटे होंगे।

28 दिसंबर को पटना रेडियो में जाना पड़ा। जब तक मैं दिल्ली में था, किसी का भी ध्यान मेरी ओर नहीं गया था। अब दिल्ली चौंकी है। पटना पहुंचते ही काव्य-पाठ के लिए तार आया, एमरजेंसी वार्ता के लिए तार आया। एक वार्ता पटना के लिए रिकार्ड करवा

दी। काव्य पाठ का एक रिकार्ड दिल्ली के लिए करवा दिया। यह भी कह दिया कि मैं कलकत्ता जा रहा हूं। दिल्ली भी एमरजेंसी की जरूरत हो, तो कलकत्ते में रिकार्ड करवाई जा सकती है।

27 दिसंबर को कविता सुनने के लिए कुछ लोगों को घर पर बुलाया था। पं. मथुरा, छबिनाथ, ब्रहशंकर, केसरी किशोर शरण (आई. ए. एस. वाले), यशोधर झा, मनोरंजन जी, डाक्टर उपेंद्र आदि लोग पहुंच गए। संयोग से मेरे स्कूल मास्टरी के दिनों के सहयोगी मौलवी अनवार उद्दीन भी आ गए थे। मनोरंजन जी ने लोहित वाले पौराणिक प्रसंग की याद दिलायी।

कविता सुनाते समय किसी ने प्रश्न उठा दिया कि इस काव्य का शीर्षक ''भाग्य-पुरुष'' होना चाहिए या परशुराम। केसरी ने कहा, रामलीला में परशुराम हुड्ड आदमी के रूप में दिखाए जाते हैं। अतएव नाम भाग्य-पुरुष ही ठीक रहेगा। मैंने समझा, केसरी यह कहना चाह रहा है कि परशुराम नाम से मिलिटरी डिक्टेटर को प्रेरणा मिलेगी। यह नाम मेरे लिए खतरा भी पैदा कर सकता।

मौलाना अनवार उद्दीन ने यह भी कहा, परशुराम नाम मत रखिए। भाग्य पुरुष अच्छा नाम है। मुझे लगा, मौलाना सामरिक हिंदुत्व की गंध के कारण परशुराम के खिलाफ हैं।

सब सुनकर पंडित यशोधर झा बोले, कवि भी सत्य से विचलित हो गया, जो जाति के आगे अंधकार है। दिनकर जी के कविता का शीर्षक परशुराम नहीं रखा, तो समझा यह जाएगा कि वे भीरू हैं।

ओमप्रकाश भी कविता सुन रहे थे। वे कम्युनिस्ट हैं। उन्होंने कहा, कविता से यह ध्वनि तो नहीं निकलती कि आवाहन मिलिटरी डिक्टेटर का किया जा रहा है। शीर्षक परशुराम रहे, इसमें मैं कोई दोष नहीं देखता।

28 दिसंबर को रेडियो ले जाने को जब मुक्त जी आये थे, उनके साथ श्री ब्रजकिशोर नारायण भी आ गए थे। मैं कविता पढ़ता रहा और वे रोते रहे। इसी प्रकार यहां कलकत्ते में कामेश्वर शर्मा कमल ने भी रोकर ही काव्य पाठ सुना।

विचार यह था कि यह कविता ''कोयला और कवित्व'' में जाएगी और उस संग्रह की आखिरी कविता होगी। लेकिन यह विचार 28 को ही बदल गया और मैंने निश्चय किया कि अब ''परशुराम की प्रतीक्षा'' नाम से एक अलग संग्रह ही प्रकाशित किया जाय। लो लो भाई यशोधर जी, एक कविता का नाम क्या, पूरी पुस्तक ही परशुराम के नाम से निकल रही है, दिनकर पर भीरुता का कलंक अब तो नहीं लगाओगे?

29 या 30 को गंगा यहीं थे। जलपाईगुडी जाकर फिर वापस लौटे हैं। कविता उन्होंने कई बार सुनी है और दो-एक सुझाव भी दिए हैं।

पूरी कविता श्री लक्ष्मीचंद्र जी ने भी सुनी। उन्होंने कहा, ''छागियो, करो अभ्यास

रक्त पीने का", इस पंक्ति को आप निकाल ही दें तो अच्छा हो। बाद को चलकर आपको इसके पश्चाताप हो सकता है।

मैंने कहा, पछताना तो बहुत पंक्तियों के लिए पड़ेगा। मगर यह पंक्ति बड़ी अनूठी है। इससे आगे चलकर यह सूचना मिलेगी कि एक बार भारतवर्ष का इतना क्रोध चढ़ा था कि उसका एक कवि ऐसी राक्षसी पंक्ति लिखने में भी लज्जित नहीं हुआ।

यहां कलकत्ते में भी मैंने "परशुराम की प्रतीक्षा" का कई जगहों पर पाठ किया है। एक समारोह में तो ऐसा हुआ कि श्री जयदलाल जी डालपिमा ने झुक कर मेरे पांव छू लिए। उन्होंने कहा, "मैंने कविता नहीं सुनी है, परशुराम का दर्शन किया है।"

31 जनवरी, 1963 (दिल्ली)

राष्ट्रपति राधाकृष्णन से भेंट

स्वागत के उपरांत राष्ट्रपति ने पूछा, "कहिए, क्या समाचार है? लोगबाग क्या सोच रहे हैं?

मैंने कहा, "तीन सवाल हैं, जिनके उत्तर में कहना चाहता हूं। (1) चीन फिर से आक्रमण कर रहा है या नहीं? (2) नये रक्षा-मंत्री टिकते हैं या जाते हैं? (3) भारत अपमानित हुआ है या नहीं?"

राष्ट्रपति बोले, "चीनी आक्रमण की तुरंत तो कोई संभावना दिखाई नहीं देती है। इसके कई कारण हो सकते हैं। कुछ भय अमरीका का है। कुछ यह बात कि रूस नाराज न हो जाए। फिर चीन को अपना समाजवादी रूप के कलंकित होने का भी हो सकता है।"

मैंने निवेदन किया, "सबसे बड़ा डेटरेंट साम्यवादी जगत का रूख है, जो अभी बर्लिन में देखने में आया। कोई बोले या न बोले, लेकिन यह बात स्पष्ट हो गई है कि रूस और यूरोप के साम्यवादी देश चीन की इस कार्रवाई से खुश नहीं हैं।"

रक्षा-मंत्री चव्हाण के बारे में राष्ट्रपति ने बताया कि "कोलंबो प्रस्ताव की चर्चा में वे शामिल नहीं किए गए। सीमा सड़क संगठन के पहले प्रधान मंत्री, चेयरमैन और रक्षा-मंत्री वाइस चेयरमैन हुआ करते थे। प्रधानमंत्री अब भी चेयरमैन हैं, लेकिन रक्षा मंत्री अब वाइस चेयरमैन नहीं हैं। वह पद ही उन्मूलित कर दिया गया। लेकिन कृष्णमेनन अब भी उसके एक सदस्य हैं। इस सब का प्रभाव रक्षा मंत्री के लिए अनुकूल तो नहीं कहा जा सकता। फिर भी बातें उनके धीरज पर निर्भर करती हैं। अभी तुरंत किसी संकट की संभावना नहीं है। रह गई अपमान की बात। सो अपमान तो भरपूर हुआ। इंडोनेशिया के सेनापति, बर्मा के डिक्टेटर और अमरीका के सेनापति, सब का यह मत है कि भारत का अपमान ही नहीं हुआ है, जो कुछ हुआ है, वह भारत की सामरिक पराजय के बराबर है।"

मैंने कहा, "एक कहानी विचित्र निकली है। कहते हैं, पुलिस जब सुरजीत सिंह को

गिरफ्तार करने गई, तब उन्होंने कहा, "गिरफ्तार क्यों करते हो? सीजफायर आ रहा है।" यही बात बंगाल के एक कम्युनिस्ट ने भी कही, जब पुलिस उसे पकड़ने गई थी। अनुमान लगाया जा रहा है कि सीजफायर होने की बात दिल्ली के एक बड़े मिनिस्टर को भी मालूम थी और वे इस उम्मीद में थे कि एक ऊंचे डिप्लोमेट की हैसियत से चीन के साथ वार्ता करने का सुयोग उन्हीं को मिलेगा और वे भारत को प्रो-चाइनीज कमिटमेंट में डाल देंगे। फिर पेकिंग, मास्को, दिल्ली का त्रिगुट बनेगा। लोग समझते हैं, उनके भीतर यह लोग अभी भी है। इसीलिए वे चीनी आक्रमण को आक्रमण नहीं कह रहे हैं अगर यह कहानी सच है, तब तो समझा जाएगा कि पंडित जी पर प्रवंचना का प्रयोग किया गया है। क्योंकि पिछले दो वर्षों से पंडित जी का रुख चीन-विरोधी रहा है और प्रो-चाइनीज लोगों के लिए वे असुविधाजनक हो गये हैं।"

राष्ट्रपति ने कहा, "मैं इस कहानी का विश्वास नहीं करता हूं।"

फिर राष्ट्रपति ने पूछा, "आपके ब्लड-प्रेशर का क्या हाल है? कविता तो आपने परशुराम पर लिख डाली है। परशुराम का अर्थ समझते हैं न? निष्कलुष वीरता, अनाशक्त हत्या, धर्म को जीवित रखने के लिए तलवार का प्रयोग। किंतु वह गांधी-मार्ग से भिन्न है।"

मैंने निवेदन किया, "जब मैं परशुराम की प्रतीक्षा लिख रहा था, मुझे रक्तचाप कई बार चढ़ा था और आवेश में आ कर मैं कई बार रोया भी था। हिंसा से मुझे बहुत घृणा कभी नहीं रही। हिटलर ने जब रूप पर चढ़ाई कर दी थी, तब मैं युद्ध का समर्थक बन गया था और सरकारी दफ्तर में बैठकर मैंने युद्ध प्रचार का काम भी किया था। लेकिन अभी तो मैं भूल गया हूं कि मैं कांग्रेसी हूं, कांग्रेस दल की ओर से संसद-सदस्य हूं। अभी मैं केवल कवि के रूप में काम कर रहा हूं। वही मेरा स्वधर्म है और उसी रूप में मैं प्रभावी हूं। मैंने जितने भी ब्राडकास्ट किए हैं या भाषण दिए हैं, उनमें यही कहा है कि नेहरू के नेतृत्व को कमजोर मत होने दो, नहीं तो देश में भीतरी संकट भी खड़ा हो जाएगा। किंतु कविताएं लिखते समय मैं उस विचारधारा पर चोट कर बैठता हूं, जिसे नेहरू ही नहीं, सभी लोग पकड़े हुए हैं। जरा इस पर तो विचार कीजिए कि विनोबा जी ने कहा है कि चीन का वापस लौट जाना अहिंसा की विजय है।"

विनोबा का नाम सुनकर राष्ट्रपति जरा विहंसे। फिर उन्होंने पूछा, "कविता में आपने क्या प्रधानमंत्री की आलोचना की है?

मैंने कहा, "प्रधानमंत्री की आलोचना नहीं है। पिछली मुलाकात में मैंने आपको बताया था कि मैंने एक कविता में लिखा है कि दुश्मन भैंस बनकर मारने आवे, तो हमें भी भैंस बनकर उसका जवाब देना चाहिए। एक अन्य कविता में आक्रमण मैंने भाई-भतीजावाद यानी गोत्रवाद पर किया है, जो सारे देश में प्रतिभा की राह रोक रहा है। और जिसका जहर बिहार में हम कुछ ज्यादा ही महसूस करते हैं। चूंकि कौल भी कश्मीरी हैं, इसलिए एक

कानाफूसी चल पड़ी है कि चोट मैंने पंडित जी पर की है। इस कानाफूसी में मुझे कुछ घबराहट होती है। मगर कविता पर मेरा इतना बस तो नहीं है कि उसे जिधर चाहूं उधर मोड़ सकूं। कविता जिधर जाना चाहती है, उसे उधर ही जाने देता हूं।''

राष्ट्रपति जरा गंभीर हो गए, फिर बोले. ''काश, मैं हिंदी जानता और आपकी कविताएं पढ़ सकता। मगर दिल्ली में आपने जो तहलका (कोमोशन) मचा रखा है, उससे मैं स्पष्ट देख रहा हूं कि आप समर्थ कवि हैं। मेरा आशीर्वाद है कि आपकी सार्मथ्य और भी बढ़े। कवि निर्भीक नहीं रहा, तो कविता पवित्र और शक्तिशाली नहीं होती।''

मैंने कहा, ''कम्युनिस्ट और गांधीवादी जहां-तहां मेरी निंदा करते हैं, मगर आम जनता तो ''परशुराम की प्रतीक्षा'' से बहुत सी खुश है। यह जानकर मुझे और खुशी है कि मेरी कविताओं की चर्चा आप लोगों के धरातल तक पहुंच रही है। कम्युनिस्ट और गांधीवादी तो मुझसे नाखुश हैं ही, मेरे कई सरकार परस्त दोस्त भी मेरे कान में तरह-तरह की बातें डालते रहते हैं। अच्छा हुआ कि 23 जनवरी को लालकिले के कवि-सम्मेलन में मैंने वह कविता सुना दी। उस समय गृह-मंत्री श्री लालबहादुर शास्त्री भी सम्मेलन में मौजूद थे।''

सेंट्रल हाल में हर सदस्य यही सोचता है कि अभी पंडित जी के नेतृत्व में विश्वास जोर से प्रकट किया जाना चाहिए। देश विपत्ति में है। ऐसे में विदेशी ताकतें हमें भटका दे सकती हैं।

22 दिसंबर को महाराष्ट्र सचिवालय में और 23 दिसंबर को बारडोली में राष्ट्रपति ने जो भाषण दिए हैं, उन्हें लोगों ने नेहरू-विरोधी समझा है। आज यह जानकर मुझे संतोष हुआ कि राष्ट्रपति भी चाहते हैं कि प्रधानमंत्री के नेतृत्व को सुदृढ़ बना कर रखना चाहिए।

बातों-बातों में भी हरिकृष्ण मेहताब की चर्चा निकल पड़ी। मैंने कहा, ''श्री मेहताब के एक मित्र ने उनसे यह कहा कि दिनकर जी आपकी लाबी की तारीफ तभी तक करते हैं, जब यह लाबी प्रधानमंत्री के विरोध पर अंकुश लगाती है। आपकी लाबी अगर प्रधान-मंत्री को हटाना चाहेगी, तो दिनकर जी आपके विरूद्ध हो जाएंगे। मेहताब साहब ने मुझसे पूछा, तो मैंने स्वीकार लिया कि हां, मेरा यही भाव है। इस पर मेहताब साहब से पूछा, ''आप कैसे जानते हैं कि हम लोग प्रधानमंत्री को हटाना चाहते हैं?'' मैंने कहा, ''इसका कोई प्रमाण नहीं है, न मैं आप पर ऐसा कोई लांछन लगाता हूं। मगर मेरा भाव यही है कि प्रधान मंत्री के खिलाफ जो एक कमजोर-सी लाबी पैदा हो रही है, उसे जन्म नहीं लेने देना चाहिए।'' राष्ट्रपति ने कहा, ''आप सही रास्ते पर हैं। मैं भी इस मत का हूं।''

चलने से पूर्व राष्ट्रपति से मैंने कहा, ''पिछली मुलाकात के बाद से आपने देश के बाहुबल के विकास पर काफी जोर दिया है। यह क्रम और भी चलाइये। भारत का मन निवृति से काफी आच्छादित हो रहा है। निवृति में भी सच्चाई जरूर है, मगर अभी तो देश को प्रवृति का ही पाठ पढ़ाना ठीक है।''

दूसरी बात मैंने यह कही कि सेना को अधिकार नहीं लेना चाहिए। पंडित जी को आशंका है उनके मरने के बाद सेना अधिकार संभाल सकती है। उनकी बात से मैं भयभीत हो गया हूं। सेना ने अगर अधिकार ले लिया, तो इससे सेना खराब हो जाएगी और भारत के हाथ में एक भी बल नहीं रह जाएगा। प्रजातंत्र के खिलाफ देश में जहां-तहां भारी असंतोष है। मगर वह क्षणिक निराला से निकला है। अपनी सड़ी-गली जमहूरियत को हम जुगाकर रख सकें, तो देरअबेर उसी से हमारा उद्धार होगा।''

राष्ट्रपति के मन पर इधर मेरे कवि-रुप का अच्छा प्रभाव पड़ा है। आज वे बोले, ''आपकी कविताओं का अनुवाद अंग्रेजी में निकलना चाहिए।'' मैंने कहा, मेरा किया हुआ अनुवाद सुपाठ्य नहीं होता है और जो लोग सुपाठ्य अनुवाद कर सकते हैं, उन्हें मेरी कविता से परिचय नहीं है।

5 फरवरी 1963 (पटना)

राजेंद्र बाबू से आखिरी मुलाकात

राजेंद्र बाबू के लिए सदाकत आश्रम के पास एक नया मकान बनवाया गया है। दिल्ली से निवृत होने के बाद जब वे पटना आए, वे सीधे पुराने सदाकत आश्रम में चले गये और कई महीने उसी मकान में रहे। जब से वे नए मकान में आए हैं, मैं उनसे मिल नहीं सकता था। आज भी गंगाशरण सिंह और श्री बसावन सिंह के साथ मैं राजेंद्र बाबू से मिलने को गया। हम लोगों से पहुंचने पर वहां बाबू नथुनी सिंह भी आ गए। एक सेक्रेटरी और दो नर्सें राजेंद्र बाबू की सेवा में नियुक्त हैं। कहां दिल्ली का विशाल राष्ट्रपति भवन और कहां यह छोटा-सा मकान। फिर भी राजेंद्र बाबू को आराम में देखकर संतोष हुआ। आराम वे पुराने सदाकत आश्रम में भी पा लेते थे।

दिल्ली से चलने के समय भी राजेंद्र बाबू स्वस्थ नहीं थे, किंतु उस समय चेहरा उनका पुष्ट था। आज वे कुछ दुबले-से दिखाई दिए। मिजाज के बारे में पूछने पर वे बोले, ''और तो सब ठीक है, पांवो में बल नहीं है। कई साल के कोर्टजन के सहारे जी रहा हूं और कोर्टजन ने ही पांवों की यह हालत कर दी है।'' इतना कहकर राजेंद्र बाबू पलंग से उठकर छोटी-सी चौकी पर बैठ गए और बोले, ''देखा न? बड़े पलंग पर पांव लटकाकर बैठूं तो उठ सकता हूं। थोड़ी ऊंचाई की खाट या चौकी पर बैठूं, तो उठा नहीं जाता है।'' और सच ही, वे कोशिश करने पर भी चौकी से उठ नहीं सके। तब सैक्रेटरी भाटिया ने उन्हें सहारा देकर चौकी से उठाया और वे खुद ही पलंग पर बैठ गए।

राजेंद्र बाबू सन् 1960 ई. में दिल्ली में बहुत जोर से बीमार पड़े थे। बचने की

उम्मीद नहीं थी। दिल्ली और बंबई के बड़े-बड़े डाक्टर आए हुए। उनका विचार ऑप्रेशन करने का था। लेकिन पटना के दो डाक्टरों—टी. एन. बनर्जी और रघुनाथ शरण ने ऑप्रेशन नहीं होने दिया। बाद में लोगों ने समझा, कि आप्रेशन हो जात तो मृत्यु की संभावना अधिक थी। राजेंद्र बाबू ने उस बीमारी का जिक्र किया और कहा, "बच जाना कोई खास अच्छा नहीं हुआ। बचने की जरूरत क्या थी?" गंगा ने कहा, "बचने की जरूरत थी और अब भी है।" इतनी देर में बाबू महामाया प्रसाद भी आ गए।

फिर चीनी आक्रमण के बारे में बातें होने लगीं। राजेंद्र बाबू इस बात से खुश थे कि आक्रमण के समय सारा देश एक होकर उठा था। ऐसी ही एकता देश में हर समय बनी रहनी चाहिए।

चीनी आक्रमण से पूर्व जुलाई में दिल्ली में अणु बम विरोधी अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ था। उसका उद्घाटन करने को राजेंद्र बाबू पटना से दिल्ली से आए थे। उस समय उन्होंने कहा था कि भारत को अपनी ओर से यूनिलेटरल निःशस्त्रीकरण कर देना चाहिए। फिर जब चीनी आक्रमण हुआ, तब पटना के गांधी मैदान में राजेंद्र बाबू ने कहा था, "भारत को चाहिए कि वह तिब्बत को स्वाधीन करवा दे।"

मैं दोनों सभाओं में मौजूद था। इन दोनों वक्तव्यों के बीच जो विरोधाभास है, वह मुझे खटकता रहा है। मन में हुआ कि राजेंद्र बाबू से पूछ ही लूं कि इन विरोधों का समाधान क्या होगा। मगर गंभीर प्रश्न उठाकर उन्हें गंभीर बनाना अच्छा नहीं लगा।

राजेंद्र बाबू ने बताया कि चीन ने 1960 ई. में जितनी भूमि पर दावा किया था, सन् 1962 के हमले के क्रम में भी वह उसी हद में रहा। यह मर्यादा उसने अवश्य पाली है। चुसुल उसके दावे में नहीं था, चुसुल वह गया भी नहीं। नेफा में फटहिल तक उसका दावा था, वहीं से वह लौट गया। राजेंद्र बाबू ने भाटिया से नक्शे मंगवाकर ये सारी बातें हम लोगों को समझायीं।

राजेंद्र बाबू से किसी ज्योतिषी ने कहा है कि चीन का दूसरा हमला अगले 19 मार्च को होने वाला है। राजेंद्र बाबू से हमें यह भी मालूम हुआ कि सन् 1958 ई. के बाद से चीन बराबर कहता आया था कि नेफा में हम अपना दावा खत्म कर सकते हैं बशर्तें कि अकसाई चीन हमें दे दो।

यही बात मुझे डाक्टर राधाकृष्णन ने भी कही थी। चीन अकसाई चीन लेकर नेफा पर अपना दावा खत्म करने को तैयार है।

फिर गंगा ने कहा कि तुम्हारी नयी कविता परशुराम की प्रतीक्षा राजेंद्र बाबू ने नहीं सुनी है। आज अच्छा मौका है। कविता इन्हें सुना दो।

राजेंद्र बाबू को परशुराम की प्रतीक्षा मैंने पूरी की पूरी सुना दी। कविता सुनने को भाटिया तो आये ही, दोनों नर्सें भी आ गयीं। मगर नर्सें तुरंत चली गयीं। शायद कविता

उनकी समझ में नहीं आ रही थी।

राजेंद्र बाबू कविता बड़े ध्यान से सुनते रहे और जहां-जहां अंधी हिंसा की बात आयी, वे मूछों में मुस्कराते रहे। जब मैंने पढ़ा :

असि छोड़ भीरु बन जहां धर्म सोता है,
पातक प्रचण्डतम वहीं प्रकट होता है।

तब राजेंद्र बाबू की स्मृति कुछ अधिक प्रखर हो गयी। यह स्मिति समर्थन की स्मिति नहीं थी। कविता वे इस भाव से सुन रहे थे कि कवि का क्रोध जब सीमा का उल्लंघन करता है, वह तब भी खूबसूरत होता है। और मैं इस भाव से सुना रहा था कि गांधी-परंपरा में भी इस क्रोध का औचित्य है। गांधी और बुद्ध को बचाने के लिए उस खड्ग की आवश्यकता है, जिस खड्ग को उनके अनुयायी निंदित बताते हैं।

राजेंद्र बाबू को कविता मैंने पूरे जोश से सुनायी, मुझे किसी प्रकार का संकोच नहीं हुआ। यदि खड्ग का नाम लेना पाप है, तो मैं मध्यम कोटि का गांधीवादी हूं, क्योंकि मेरे जीवन दर्शन पर गांधीजी का भारी प्रभाव है। अगर गांधी-धर्म आत्मरक्षा में तलवार उठाने को पाप नहीं समझता, तो मैं भी उत्तम कोटि का गांधीवादी हूं। □

हिंदी साहित्य पर गांधीवाद का प्रभाव

प्रो. विजयेंद्र स्नातक

विगत साठ वर्षों से साहित्य और राजनीति में गांधीवाद शब्द का प्रचलन है। गांधीवाद को एक नवीन जीवन दर्शन के रूप में स्वीकार कर लिया गया है। राजनीतिक क्षेत्र में इसका प्रयोग एक सिद्धांत के रूप में होता है। साहित्य में भी गांधी विचारधारा को संपुष्ट करने वाली रचनाओं को गांधीवादी कहा जाता है। किंतु, गांधी जी स्वयं इस शब्द को स्वीकार नहीं करते थे।

'हरिजन सेवक' में गांधी जी ने 18 मार्च 1936 के अंक में स्पष्ट लिखा था "गांधीवाद नाम की कोई वस्तु है ही नहीं और न मैं अपने पीछे कोई संप्रदाय छोड़ जाना चाहता हूं। मेरा यह दावा नहीं है कि मैंने किसी नए सिद्धांतवाद या शिक्षा का अविष्कार किया है। मैंने तो जो शाश्वत सत्य है उसको अपने नित्य के जीवन में और प्रतिदिन के प्रश्नों तथा समस्याओं पर अपने ढंग से व्यक्त घटाने का ही प्रयास किया है।"

महात्मा गांधी के इस कथन के बावजूद राजनीति, साहित्य और वैचारिक चिंतन में गांधीवाद शब्द पूरी सार्थकता के साथ जीवित हैं। प्रस्तुत लेख में प्रोफेसर विजयेंद्र स्नातक ने गांधीवाद शब्द का प्रयोग उसकी वैश्विक व्यापकता के परिप्रेक्ष्य में किया है। डॉ. विजयेंद्र स्नातक लब्ध प्रतिष्ठित साहित्यकार उच्चस्तरीय प्राध्यापक तथा आचार्य कोटि के गण्यमान् विद्वान हैं। अनेक सम्मानों से सम्मानित डॉ. स्नातक ने शैली के सौष्ठव, मार्दव और लालित्य से साहित्य समीक्षा में जो स्थान बनाया है वह दूसरों के लिए स्पर्धा का विषय है।

विश्ववंद्य महात्मा गांधी के प्रयत्न और पुरुषार्थ से जहां हमारे देश को स्वतंत्रता प्राप्त हुई, वहां उनके महान् व्यक्तित्व से एक नवीन जीवन दर्शन एवं गंभीर राजनीतिक प्रेरणा भी हमें मिली है। भारतवर्ष को ब्रिटिश साम्राज्य की दासता से मुक्त कराने के लिए उन्होंने समय-समय पर जो आंदोलन किए उनकी अनुकरणात्मक गूंज राजनीतिक क्षेत्रों में आज भी सुनी जा सकती है, किंतु गांधी जी द्वारा प्रदत सांस्कृतिक चेतना अन्य क्षेत्रों की भांति आधुनिक हिंदी साहित्य से भी धीरे-धीरे लुप्त होती जा रही है। आज के नवलेखन में गांधीवाद या गांधीदर्शन का सर्वथा प्रत्याख्यान है, ऐसा तो मैं नहीं मानता, किंतु उसे लगभग त्याज्य ठहरा दिया गया है। एक समय था जब महात्मा गांधी अपने अहिंसात्मक प्रयोग की प्रथम विजय के बाद अफ्रीका से स्वदेश आए थे और उनके भारत पहुंचते-पहुंचते हिंदी के कवियों ने उनका प्रशस्ति-गान प्रारंभ कर दिया था।

दक्षिण अफ्रीका से लौटने के बाद गांधी जी की कर्मभूमि भारतवर्ष बनी और अहिंसा-सत्य के साथ निष्क्रिय प्रतिरोध का नया संघर्ष-मंत्र उन्होंने भारतवासियों को दिया। ज्यों-ज्यों गांधी जी की विचारधारा देश में फैली त्यों-त्यों देशवासियों के मन में उनके प्रति श्रद्धा और स्नेह बढ़ता गया और कुछ वर्षों में ही वे महात्मा के रूप में पूज्य बन गए। और उनके व्यक्तित्व एवं कार्यों का प्रभाव देश के सभी क्षेत्रों में लक्षित होने लगा।

भारतवर्ष के राजनीतिक इतिहास में गांधी-युग सन् 1920 से सन् 1946 तक माना जाता है।

इस युग में कदाचित ही कोई कवि या लेखक ऐसा होगा जो गांधी जी से प्रभावित न हुआ हो और जिसने अपनी रचनाओं में उस युग के आंदोलनों का वर्णन न किया हो, किंतु गांधी-दर्शन की स्पष्ट और प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति बहुत कम साहित्यकारों में मिलती है। गांधीवाद के व्यवहार या कार्यपक्ष का स्तवन करने वाले साहित्यकार तो अत्यधिक हैं किंतु चिंतन या विचार को पक्ष को स्वीकार कर रचना करने वालों की संख्या सीमित है।

हिंदी साहित्य पर महात्मा गांधी के प्रभाव को हम विविध रूप में देख सकते हैं। प्रभाव का पहला और स्थूल रूप है गांधी जी के व्यक्तित्व अर्थ कर्म सौंदर्य पर मुग्ध होकर प्रशस्ति परक साहित्य-सृजन। इस प्रकार के साहित्य में गांधी जी को केंद्र में रखकर प्रशस्ति परक अथवा आख्यानात्मक शैली से काव्य, नाटक, उपन्यास, जीवनी आदि का प्रणयन हुआ है।

दूसरे प्रकार का साहित्य वह है जिसमें महात्मा गांधी का प्रभाव उनके विचार दर्शन के माध्यम से व्यक्त हुआ। गांधी जी की उदात्त वृत्तियों से प्रेरित होकर साहित्यकार अपनी रचनाओं में प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से गांधीवादी विचारों को ग्रहण करते हुए देखे जा सकते हैं। इस प्रकार के प्रभाव को ही मैं यथार्थ प्रभाव मानता हूं।

तीसरे प्रकार का प्रभाव वस्तुतः प्रभाव न होकर प्रभाव की अस्वीकृति है। इसे हम धनात्मक न मानकर ऋणात्मक प्रभाव कह सकते हैं। किंतु ऋणात्मक होना भी प्रभाव के

अस्तित्व का निषेध नहीं है।

इस प्रकार का ऋणात्मक प्रभाव सन् 1950 के बाद की कृतियों में लक्षित होता है। देश के विभाजन ने जिस हिंसावृति का उजागर किया वह गांधी जी की जीवन-साधना के लिए चुनौती बन गई और वामपंथी विचारधारा के लेखकों ने उसकी खुलकर खिल्ली उड़ाई और आधुनिकता बोध का दंभ करने वालों ने उसकी जानबूझ कर उपेक्षा की। ऐसी कई कविताएं और कई उपन्यास प्रकाशित हुए जिसमें गांधीवाद को आधुनिक जीवन संघर्ष की भूमिका में एकांगी, अपूर्ण अवैज्ञानिक और काल्पनिक अध्यात्म कह कर अमान्य सिद्ध करने का प्रयास किया गया। गांधी की विचारधारा के खंडन का प्रबल प्रयत्न ही गांधी के व्यापक प्रभाव की स्वीकृति है।

इस त्रिविध-प्रभाव का संधान हम हिंदी साहित्य की प्रायः सभी प्रमुख विधाओं में कर सकते हैं। काव्य, नाटक, उपन्यास, कहानी, एकांकी, रेखाचित्र, निबंध, जीवनी आदि सभी रूप विधाओं का लघु लेख में समाहार कठिन है अतः सांकेतिक शैली से काव्य की सीमा में ही मैं प्रभावों का उल्लेख करूंगा।

राजनीतिक कविता

गांधी जी के कर्म-सौंदर्य पर मुग्ध होकर प्रशस्तिपरक गीतों और लघु खंडकाव्यों की रचना द्विवेदी युग में ही प्रारंभ हो गई थी। छायावाद और छायावादोत्तर युग तक यह परंपरा अखंड रूप से चलती रही है और सहस्राधिक कविताओं में भाव-गांभीर्य भले ही न हो किंतु उत्साह और उमंग के साथ उत्सर्ग की भावना इनमें ओतप्रोत है। इस प्रकार की कविताओं के शताधिक संग्रह प्रकाशित हुए हैं जिनमें एक ही कवि द्वारा गांधी विषयक रचनाएं संकलित हैं। प्रशस्तिपरक इन कविताओं में आंदोलनात्मक स्वर के साथ बलिदान और त्याग की भावना को भी स्थान मिला है। हल्की-फुल्की तुकबंदी और नारेबाजी भी इनमें है। मैथिलीशरण गुप्त की प्रसिद्ध कविता "खुली है कूटनीति की पोल महात्मा गांधी जी जय बोल" इसी वर्ग की रचना है। माखनलाल चतुर्वेदी की "वीर पूजा" शीर्षक कविता भी ऐसे ही आंदोलनात्मक स्वर का सुंदर निर्देशन है।

गांधीवाद का प्रत्यक्ष या परोक्ष प्रभाव उस समय के प्रायः सभी साहित्यकारों पर लक्ष्य किया जा सकता है किंतु वरिष्ठ साहित्यकारों में माखनलाल चतुर्वेदी, मैथिलीशरण गुप्त, सियाराम शरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, रूपनारायण पांडेय, गया प्रसाद शुक्ल स्नेही, सुभद्रा कुमारी चौहान, बालकृष्ण शर्मा नवीन, सोहनलाल द्विवेदी, सुमित्रानंदन पंत, दिनकर, बच्चन, नरेंद्र शर्मा, हरिकृष्ण प्रेमी, जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द, भवानी प्रसाद मिश्र आदि प्रमुख हैं।

इन साहित्यकारों में सियाराम शरण गुप्त ही एक ऐसे साहित्यकार हैं जिन्होंने गांधी

जी के प्रभाव को आंदोलन की भूमिका में ग्रहण न करके अपने स्वभाव के अनुकूल उसकी सात्विकता में ही स्वीकार किया है। सहज संवेदनशील मानवीय भावना के साथ अहिंसा का तात्विक पक्ष, पूर्ण सत्यनिष्ठा से, उनकी गांधीवादी रचनाओं में प्रतिफलित हुआ है। "बापू" शीर्षक उनकी काव्यकृति को पढ़कर पाठक उस गांधी का चित्र मन में कल्पित करता है जो पूर्ण अहिंसक-आस्था से स्वाधीनता संग्राम के पथ पर बढ़ा चला जा रहा है, जिसके संघर्ष का संबल प्रेम और त्याग है।

नारों और पुकारों के बीच जूझने और कटमरने के लिए बिगुल बजाने वाला गांधी, सियाराम जी की रचनाओं में ही नहीं है। गांधी जी के जीवन का सहज सरल पक्ष ही सियाराम शरण गुप्त जी की सहज अभिव्यक्ति में प्रस्फुटित हो उठा है।

गांधी जी के अनुसार स्वराज्य की मूर्ति चतुर्मुखी है। उनकी दृष्टि में स्वराज्य की मूर्ति का पहला मुख है—आत्मराज्य अथवा आत्मनियंत्रण। दूसरा मुख है आत्मशक्ति अथवा प्रेम शक्ति इस शक्ति को प्राप्त करने का मार्ग है। निष्क्रिय प्रतिरोध (पैस्सिव रेजिस्टेंट) तीसरा मुख "स्वदेशी" की भावना है और यही इसकी स्फुर्ति है। पद्धति विरोध या परिपाटी विरोध चौथा मुख है। पद्धति से उनका तात्पर्य है, विरोध मनुष्य से नहीं वरन् उसकी पद्धति या सभ्यता से है।

स्वराज्यमूर्ति की कल्पना उन्होंने दक्षिण अफ्रीका के असहयोग आंदोलन के समय ही की थी और तभी रस्किन तथा टालस्टाय के विचारों से प्रभावित होकर उन्होंने इसे अंतिम रूप दिया था। भारत लौटने पर उन्होंने "सर्वहित में आत्म हित" अर्थात सर्वोदय के सिद्धांत पर बल दिया। मजदूर और कृषक के सादा जीवन को श्रेष्ठ ठहराया। वकील तथा नाई की मजदूरी में भेद स्वीकार नहीं किया। इसके फलस्वरूप लेवर (अर्जित भोजन) तथा ट्रस्टीशिप की विचारधारा सामने आई। बाइबिल में लिखा है कि तू अपनी रोटी उस समय खा जब तेरी भृकुटि कठिन परिश्रम से भींगी हो। रूसी लेखक वांडरिफ ने इसी ब्रेड लेबर के सिद्धांत को अपने देश में सबसे पहले प्रस्तुत किया था। गांधी ने इसे भारत में प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न किया।

जिस स्वराज्य प्राप्ति के लिए गांधी जी प्रयत्नशील थे उसमें संघर्ष अवश्यंभावी था अतः उन्होंने संघर्ष को भी प्रतिशोधहीन रखने पर जोर दिया। क्रोध, हिंसा, रक्तपात, भय और प्रतिशोध गांधी जी के अहिंसात्मक आंदोलन से सर्वथा बहिष्कृत थे। आत्मबल को अपराजेय शक्ति पर अटूट विश्वास ही उनके संघर्ष का संबल था। अहंकार का विगलन इस संर्घष का मेरूदंड था। इसी प्रभाव से विस्मय विमुग्ध हो, विश्वविख्यात वैज्ञानिक आइंस्टीन ने कहा था कि "आने वाली पीढ़ियां शायद मुश्किल से ही यह विश्वास कर सकेंगी कि गांधी जैसे हाड़ मांस का पुतला कभी इस धरती पर पैदा हुआ होगा।"

गांधीवाद के जिन सिद्धांतों के प्रति साहित्यकारों ने अपनी प्रीति और दृढ़ आस्था

व्यक्त की उनमें साध्य के साथ साधन की निर्देषता स्वीकार करना अनिवार्य माना जाता था। छायावादी समीक्षक शांतिप्रिय द्विवेदी ने गांधीवाद की अपनी शैली में व्याख्या करते हुए लिखा है—"गांधीवाद स्थापित स्वार्थों के बजाय मनुष्यता का व्यवहार चलाना चाहता है जिसमें मनुष्य स्वभावतः सहयोगी प्राणी है न कि अपने अहं पोषित स्वार्थों के कारण। गांधीवाद तो हम को लेकर चलता है। मैं की जगह "हम" की अखिल की चेतना जगाता है। समाज की सामयिक परिस्थितियों में मार्क्सवाद युगधर्म है; आपद्धर्म है 'गांधीवाद मानव' की मनः स्थिति का सनातन शाश्वत धर्म है। ईश्वर, सत्य और अहिंसा इस सनातन धर्म के अंग हैं।"

सन् 1920 के बाद महात्मा गांधी ने सर्वतोव्यापी सक्रिय राष्ट्रीय चेतना द्वारा जनमानस को इतने चमत्कारी ढंग से प्रभावित किया कि राजनीति धर्म, साहित्य दर्शन और कला सभी क्षेत्रों में सत्य और शिव का आग्रह प्रबल हो उठा। राजनीतिक संघर्ष में सत्याग्रह एक संश्लिष्ट शब्द बन कर साधन के रूप में स्वीकार्य हुआ तो साहित्य में इस सत्य को सूक्ष्म स्तरों पर उद्घाटित किया गया। गांधी जी ने स्वयं सत्य की व्याख्या करते हुए सत्य को परमेश्वर कहा है और ईश्वर तथा मानवता की नितांत एकता का प्रतिपादन किया है। साहित्यिक कृतियों में सत्य का यही रूप गृहीत हुआ और गांधी-तत्व दर्शन की यथार्थ व्याख्या प्रस्तुत करने के लिए काव्य, उपन्यास तथा नाटक लिखे गए।

इस संदर्भ में सबसे पहला स्थान रामनरेश त्रिपाठी कृत खंडकाव्य "पथिक" का है। पथिक की रचना सन् 1920 में हुई थी। मोहन दास करमचंद गांधी तब तक महात्मा गांधी बन चुके थे और उनका अहिंसात्मक आंदोलन देशव्यापी हो गया था। पथिक शुद्ध अहिंसक और मानवतावादी दृष्टि संपन्न निःस्वार्थ सेवक के रूप में चित्रित किया गया है। पथिक के जीवन का ध्येय वही है जो उस समय महात्मा गांधी का था। स्वराज्य, स्वदेशी और स्वभाषा की स्थापना में पथिक उसी तरह संलग्न है जैसे महात्मा गांधी जी—

अपना शासन करो यही शांति है, सुख है।
पराधीनता से बढ़कर जग में न दूसरा दुख है।

गांधी जी की विचारधारा को आत्मसात् कर साहित्य सृजन करने वाले साहित्यकारों में से कुछ कवियों ने तो गांधी जी की स्वराज्य विषयक धारणा (सत्याग्रह, अहिंसा, सत्य, निर्भयता आदि तत्वों) को ज्यों का त्यों अपनी कविता में स्थान दिया है। मैथिलीशरण गुप्त की एक उदबोधनपूर्ण कविता में इन सभी तत्वों का प्रतिपादन किया गया—

जिये विरोधी भी, विरोध ही पायेगा इससे प्रतिशोध।
अस्त्र अपूर्व अमोघ हमारा, निश्चित है निष्क्रिय प्रतिरोध।

पं. रामनरेश त्रिपाठी ने इसी भाव की अभिव्यक्ति इस प्रकार की है—

"मैं अमर हूं मौत से डरता नहीं,
सत्य हूं मिथ्या डरा सकती नहीं,
मैं निडर हूं शस्त्र का क्या काम है।
मैं अहिंसक हूं न कोई शत्रु है।"

कविवर नेपाली ने भारतीय स्वाधीनता संग्राम का वर्णन पूरे गांधीवादी प्रभाव में किया है।

है अपूर्व यह युद्ध हमारा हिंसा की न लड़ाई है,
नंगी छाती की तोपों से ऊपर विकट चढ़ाई है,
तलवारों की धार मोड़ने गर्दन आगे आई है,
सिर की, मारों से डंडों की, होती यहां सफाई है,

इस प्रकार की अनेक कविताएं गांधीवाद के प्रभाव से उस समय लिखी गई थीं। "एक फूल की चाह" शीर्षक प्रसिद्ध कविता आत्मोत्सर्ग की व्यंजना करने वाली रचनाओं में अन्यतम है।

श्री मैथिलीशरण गुप्त ने अपने तीन प्रसिद्ध काव्यों में वर्तमान समाज और सामाजिक आंदोलनों को गांधीवादी प्रभाव में अंकित किया है। साकेत, यशोधरा और जयभारत तीनों काव्यों में यह प्रभाव देखा जा सकता है। साकेत में राम के वनगमन के समय प्रजा सत्याग्रह करती है, राजमार्ग पर लेट जाती है, दशरथ और भरत के विरोध में सविनय-अवज्ञा आंदोलन करने की ठान लेती है। राम अपने उद्देश्यों की घोषणा करते हैं तब ऐसा प्रतीत होता है कि सन् 1930 के गांधी जी ही बोल रहे हों—

"निज रक्षा का अधिकार रहे जन-जन को,
सबकी सुविधा का भार किन्तु शासन को।
जन सम्मुख धन को तुच्छ जताने आया,
मैं आर्यों का आदर्श बताने आया।
सुख शान्ति हेतु मैं क्रांति मचाने आया,
विश्वासी का विश्वास बचाने आया।
मैं आया उनके हेतु कि जो तापित हैं
जो विवश, विकल, बलहीन, दीन शापित हैं।"

"जयभारत" में युधिष्ठिर के द्वारा साधन की शुद्धता पर बल देते हुए कवि ने गांधीवादी प्रभाव को स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है—

"सिद्ध नहीं होता शुद्ध साधन से साध्य जो,
उसकी विशुद्धता भी शंकनीय होती है,
तात, मेरा पक्षपात योग्य नहीं इतना,
पाप जो हुआ है उसे मानना ही चाहिए।"

सत्याग्रह संग्राम में स्वयं सक्रिय रूप में संलग्न होने के कारण इन कवियों के गीतों में भावावेश, अनुभूति, प्रवाह और सच्चाई है, यदि नहीं है तो केवल रसाश्रयी कविता नहीं है। कवि केवल भाव के स्तर पर आत्मविभोर भी नहीं हुए है वरन् अपनी संपूर्ण सत्ता के साथ काव्य में निमज्जित हो गए हैं। भारतीय राष्ट्रवाद की कल्पना में गांधी जी ने जातिवाद और संप्रदायवाद को सर्वथा छोड़ देने की बात बार-बार दुहराई थी।

इस प्रकार स्फुट पद्यों में अभिव्यक्ति के लिए कुछ प्रतीक भी निर्मित हुए थे जिनमें मिथ और इतिहास का अच्छा सम्मिश्रण है जैसे—पुष्प—एक बलिदानी भारतीय हृदय। सत्याग्रही—-प्रह्लाद (पौराणिक पात्र) भारता माता-देवकी और द्रौपदी। सत्याग्रह संग्राम—- महाभारत का युद्ध। कैदी वसुदेव, देवकी, कृष्ण। आततायी शासन और शासक कंस दुःशासन और दुर्योधन। सूली पर चढ़ने वाले ईसामसीह, कारागार—कृष्ण का जन्म स्थल। शहीद सुकरात और मंसूर। ये प्रतीक इतने सुपरिचित हैं कि इन्हें अभिद्या के रूप में ही समझा जा सकता है। गांधी जी के प्रभाव में ही ये पौराणिक प्रतीक असहयोग आंदोलन के व्यंजक बन गए थे।

गांधी के राजनीतिक प्रभाव का प्रारंभ सन् 1924 से होता है। यही समय हिंदी में छायावादी काव्य के उदय का है। कुछ आलोचकों ने छायावाद पर गांधीवाद का प्रभाव खोजने की चेष्टा की है किंतु मेरी अपनी दृष्टि से यह चेष्टा अधिक युक्तिसंगत नहीं है। काल्पनिक जगत में विचरण करने वाले कवियों की दृष्टि में कला का प्रयोजन वह नहीं होता तो कर्मयोगी गांधी जैसे साधकों की दृष्टि में होता है।

अध्यात्मत्व गांधीवाद से प्रेरित है। सर्वभूतहित कामना भी गांधीवाद की प्रेरणा का फल है। किंतु मैं इन निष्कर्षों के पक्ष में अपना मत नहीं दे सकता। कवि पंत की प्रगति चेतना को छोड़कर मैं गांधीवाद को छायावादी काव्य में खोजने के पक्ष में नहीं हूं। हां, इतना अवश्य है कि पंत और महादेवी ने महात्मा गांधी के प्रति श्रद्धाभाव की अभिव्यक्ति करते हुए उनके सिद्धांतों को भारतीय संस्कृति की गौरवपूर्ण परंपरा का विकास माना है। पंत जी के प्रगतिवाद काव्य पर गांधी के व्यक्तित्व की गहरी छाप है। मार्क्सवादी विचारों की

प्रबल उत्तेजना में गांधी जी ही एक ऐसे सात्विक व्यक्ति थे जो पंत के साथ रहे। फलतः युगांत, युगवाणी और ग्राम्या में हर तीसरी कविता के बाद किसी न किसी रूप में उन्हें देखा जा सकता है। सन् 1936 में "बापू के प्रति" शीर्षक कविता में कवि पंत ने गांधीवादी जीवन दर्शन को बड़े सटीक रूप में अंकित किया है। गांधी जी ने समस्त कार्यक्रम और समग्र सांस्कृतिक चेतना इस कविता में प्रतिध्वनित हो उठा है।

जड़वाद जर्जरित जग में तुम अवतरित हुए आत्मा महान्,
यंत्राभिभूत युग में करने मानव जीवन का परित्राण।
उस के चरखे में काम सूक्ष्म, युग-युग का विषय जानित विषाद,
गुंजित कर दिया गगन जग का भर तुमने आत्मा का निनाद।

गांधी जी के अहिंसा, सत्य, प्रेम, आत्मशुद्धि, आत्मनियंत्रण, तप-त्याग जैसे मूलभूत आदर्शों को स्वीकार कर सियारामशरण गुप्त का छायावादोत्तर काव्य "उन्मुक्त" इस संदर्भ में सर्वाधिक उल्लेख्य है। उन्मुक्त की कल्पित कथा, गांधी-दर्शन को घटनाचक्रों के माध्यम से पल्लवित करने में पूर्णतः सफल है—

हिंसानल से शांति नहीं होता हिंसानल
जो सबका है वही हमारा भी मंगल
मिला हमें चिर सत्य आज यह नूतन होकर,
हिंसा का है एक अहिंसा ही प्रत्युतर।

सियारामशरण के अग्रज भी युद्ध को अनिष्ठ की परंपरा मानते हैं किंतु उनकी वाणी में गांधी मार्ग का वैसा आग्रह किया ही नहीं है जैसे उन्मुक्त में है।

युद्ध की समस्या पर कवि दिनकर ने कुरूक्षेत्र में महाभारत प्रसंग के माध्यम से गंभीर चिंतन-मनन प्रस्तुत किया है। कवि दिनकर के गांधीवादी अहिंसा के मार्ग से युद्ध का समाधान नहीं किया किंतु समस्त विचार-विमर्श की प्रेरक शक्ति गांधीवादी ही है।

प्रगतिवाद कवियों ने यद्यपि गांधीवाद को स्वीकार नहीं किया परंतु मानवीय गुणों से विकास के संदर्भ में गांधी जी की अहिंसा तथा विश्वबंधुत्व भावना का प्रभाव भगवतीचरण वर्मा, शिवमंगल सिंह सुमन, भवानी प्रसाद मिश्र आदि कवियों में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। गांधीवाद के विचार दर्शन में निष्ठा रखने वाले कवि भवानी प्रसाद मिश्र ने तो शताधिक कविताएं गांधी के गुणगान में लिखी हैं। उनकी कुछ कविताओं में गंभीर व्यंग्य का भी पुट है किंतु वह व्यंग्य मूल दर्शन पर न होकर छद्म विचारधारा का तथाकथित गांधीवादियों पर है। प्रगति चेतना को जब मानवतावाद की उच्च भूमि पर इन कवियों ने

प्रतिष्ठित किया तब उनके अंतर्मन पर गांधी जी का प्रभाव उसके पूर्ण औदात्य के साथ क्रियाशील था।

उपन्यास

गांधीवादी विचारधारा (वे आफ लाइफ) का सबसे व्यापक और प्रत्यक्ष प्रभाव उपन्यास सम्राट प्रेमचंद की कृतियों में देखा जा सकता है। सेवासदन से लेकर गोदान तक प्रेमचंद किसी न किसी रूप में गांधी जी को साथ लेकर चले हैं। प्रेमाश्रम, रंगभूमि और गोदान के नायक गांधीवादी विचारों से गढ़े गए हैं। उनके कथन, उनके कार्य व्यापार, उनका चिंतन, मनन, गांधी डायरी से अविकल रूप में ग्रहण किया-सा लगता है, किंतु गांधीवाद के इस बाह्य प्रभाव को देखकर यह भ्रम नहीं होना चाहिए कि प्रेमचंद गांधीवादी जीवन-दर्शन के पूर्ण अनुयायी थे। प्रेमचंद का प्रभाव ग्रहण एक सीमित क्षेत्र तक था, गांधी जी के प्रगतिशील समाज सुधार के कार्यों से उनका तादात्म्य था किंतु गहन जीवन दर्शन तक प्रेमचंद की पैठ न थी। गांधी जी जिस अध्यात्म समन्वित जीवन दृष्टि को लेकर चलते थे और जितनी अंतर्मुखी उनकी वृत्ति थी, प्रेमचंद उतने ही समाजोन्मुखी और बहीर्मुखी थे। अतः गांधी जी के प्रभाव को भी उन्होंने समाज सुधार के मार्ग से ग्रहण किया है। आध्यात्म या चेतना के गहन स्तर पर जाने की प्रेमचंद ने आवश्यकता नहीं समझी।

प्रेमाश्रम में डिपुटी ज्वाला सिंह की पत्नी शीलमणि ने अपने पति के इस्तीफे के समय जो उदगार व्यक्त करती हैं उनमें गांधी युग का संपूर्ण चित्र उभरता-सा लगता है। वह कहती है, "नेताओं ने देश को दरिद्रता के चंगुल से छुड़ाने के लिए चरखों और करघों की व्यवस्था की है, सरकार उसमें बाधा डाल रही है। स्वदेशी कपड़े का प्रचार करने के लिए दुकानदारों और गाहकों को समझाना अपराध ठहरा दिया गया है। नशे की चीजों का प्रचार कम करने के लिए नशेबाजों और ठेकेदारों से कुछ कहना सुनना भी आज अपराध हो गया है। लेकिन सत्याग्रही स्वयं सेवक इन बाधाओं से भयभीत न होकर अपना कर्तव्य शांति से कर रहे हैं।"

औद्योगिक सभ्यता से चिंतित और आशंकित गांधी जी के कर्त्तव्य कर्म को साकार बनाने वाला पात्र रंगभूमि में सूरदास है। सूरदास का विरोध व्यक्ति से नहीं पद्धति से है, औद्योगिक सभ्यता से है। सूरदास सच्चे सत्याग्रही और अहिंसक योद्धा है। वह शरीर बल की अपेक्षा आत्मबल से विजय प्राप्त करता है। विपक्षी का हृदय परिवर्तन करने के लिए सूरदास के पास प्रेम और मानवीयता की अपार धरोहर है।

गोदान में प्रेमचंद ने होरी का चरित्र कर्तव्यनिष्ठा से ऊपर साधुता की भूमि पर प्रतिष्ठित किया है। होरी को केवल कर्त्तव्यनिष्ठ न रहकर साधुता की भूमि पर प्रतिष्ठित किया है। होरी केवल कर्त्तव्यनिष्ठ न रहकर साधु की श्रेणी में पहुंच जाता है। गांधीवादी

दृष्टि से वह आदर्श नहीं रहता किंतु उसे अपने पाप-पुण्य की चिंता नहीं है, चिंता है पर दुख हरण की। होरी की यह उदात्त वृति यथार्थ होने के साथ मानवीय है अतः वह कर्त्तव्य से भी बड़ी और श्रेष्ठ है। प्रेमचंद की भावना पर गांधी का अमिट प्रभाव था और होरी में उनकी दृष्टि संतों की न होकर मानव की है।

अछूतोद्धार की समस्या का हल कर्मभूमि में प्रस्तुत किया गया है। कहने का सारांश यह कि गांधी जी ने समाज सुधार के लिए जिन कार्यक्रमों को स्वीकार किया था उनका कथा माध्यम से विवरण प्रेमचंद ने दिया। गांधी जी ने सफल जीवन के लिए जिस पद्धति का निर्माण किया था, प्रेमचंद ने आदर्शवादी पात्रों के माध्यम से उसे चरितार्थ करके दिखाया।

दूसरे उपन्यासकार जैनेंद्र हैं जो गांधी जी के सूक्ष्म विचार दर्शन को कहानी और उपन्यासों के माध्यम से प्रस्तुत करने में सफल हुए हैं। प्रभाव शब्द यदि हल्का माना जाय तो मैं इसका प्रयोग नहीं करना चाहूंगा। लेकिन गांधी दर्शन का पोषण जैनेंद्र जी की अनेक कहानियों में है। ऐसा कहना असंगत न होगा कि गांधी जी का समस्त दर्शन सत्य पर केंद्रित है। सत्य के प्रति कठोर आग्रह जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में यदि नहीं है तो न आत्मशुद्धि होगी और न आत्मनियंत्रण ही। जैनेंद्र जी सत्य को इसी रूप में स्वीकार करते हैं। उनकी दृष्टि में भी सत्य अविभाज्य है, व्यावहारिक सत्य और परमार्थ सत्य कहकर उसे विभक्त करने से दम्भ फैलता है, मानो ये दोनों विरूद्ध हों।

लेकिन जो वस्तुतः सत्य है वही परमार्थ का सत्य है, त्रिकाल का सत्य है। सत्य की इस परिभाषा के साथ मानव मात्र में समबुद्धि स्वतः आ जाती है। परंपरागत रूढ़ नैतिक दृष्टि को बदलने की आवश्यकता उनके उपन्यासों में स्त्री पात्रों के द्वारा व्यक्त की गई है। परख, सुनीता, त्यागपत्र, कल्याणी, सुखदा, विवर्व, व्यतीत आदि सभी उपन्यों में नैतिकता और सत्य का यह सूक्ष्म अंतर्द्वन्द्व सर्वत्र द्रष्टव्य है। जैनेंद्र जी का जयवर्द्धन उपन्यास गांधीवादी विचारधारा के आवर्त में लिखा गया स्वछन्द, स्वतंत्र एवं उन्मुक्त भावी समाज का चित्र उपस्थित करता है। युद्ध की समस्या जयवर्द्धन में है किन्तु उसका समाधान पूर्णतः गांधीवादी नहीं है अर्थात् शुद्ध अहिंसा से युद्ध का सामना नहीं हो सकता। जैनेंद्र को गांधी दर्शन का आचार्य माना जाता है। यह आचार्य पद उन्हें मिला है उनके निबंधों और भाषणों से। गांधी दर्शन के सूत्र जैनेंद्र के निबधों में सटीक उतरे हैं, प्रश्नोतरों में उनका भाष्य है। इस भाष्य में जैनेंद्र कदाचित् गांधी से भी गहरे उतर गए हैं। इसलिए मैं प्रभाव शब्द को बचा रहा था।

तीसरे गांधीवादी उपन्यास लेखक सियारामशरण गुप्त हैं। कुछ आलोचकों ने तो केवल उन्हीं को शुद्ध गांधीवादी माना है। गोद, अन्तिम, आकांक्षा और नारी उपन्यासों में सियारामशरण ने गांधी दर्शन के व्यावहारिक एवं तात्विक, दोनों पक्षों की अत्यंत सजीव अभिव्यक्ति की है। गांधी जी ने जिस जीवन दर्शन की प्रतिष्ठा की थी उसका चिन्मयशक्ति की दर्शन शास्त्र के द्वारा खोज करना नहीं था। सत्य और संयम ही उनके दर्शन के आधार

थे। राग से विराग की ओर चले जाना, ज्ञान नहीं है। सुख से दुख की अति पर चले जाना सन्यास नहीं है, आत्महिंसक तपश्चर्या द्वारा मार्ग का संधान सन्मार्ग की शोध नहीं है। सियाराम शरण ने अपने पात्रों के माध्यम से इसी गांधी दर्शन के प्रभाव को अक्षुण्ण रखने में अद्‌भुत सफलता प्राप्त की है।

नाटक

गांधो जी के कर्म पक्ष पर, उनके व्यावहारिक दर्शन पर, हिंदी के कई नाटककारों का ध्यान गया और कई नाटक अहिंसा, सत्याग्रह, स्वदेशी आंदोलन आदि विषयों पर लिखे गए। इस संदर्भ में सेठ गोविंददास क़े दो दर्जन गांधीवादी नाटक उल्लेख्य हैं। ''दुख क्यो''? ''गरीबी अमीरी'', हिंसा या अहिंसा, सेवापथ त्याग या ग्रहण, दलित कुसुम, प्रकाश राम और रहीम, राम से गांधी आदि नाटकों में गांधी जी के व्यवहार दर्शन तथा तत्व दर्शन को सेठ जी ने पूरे विस्तार के साथ चित्रित किया है। तत्व दर्शन के प्रस्तुतीकरण में पाठक का मतभेद हो सकता है किंतु सेठ जी को गांधी निष्ठा में उससे कोई अंतर नहीं आता।

हरिकृष्ण प्रेमी का ''स्वर्ग विहान'' गांधी जी के सत्याग्रह आंदोलन के सिद्धांतों के निरूपण के लिए लिखा गया एक गीति नाट्य है। आधुनिक लेखकों ने विष्णु प्रभाकर के कई एकांकी गांधी विचार के सर्मथन में नाटक लिखे हैं। उनमें तत्व दर्शन पर उतना बल नहीं है जितना व्यवहार पक्ष में है।

हिंदी समीक्षा पर भी गांधीवादी प्रभाव परिलक्षित किया जा सकता है। गांधीवादी समीक्षकों में शांतिप्रिय द्विवेदी का नाम उल्लेखनीय है। शांतिप्रिय द्विवेदी ''सामयिकी'' के लेखों में गांधीवादी जीवन दर्शन के प्रभाव से छायावादी काव्य के मूल्यांकन का प्रयास किया है।

निबंध

गांधीवाद का प्रभाव तत्कालीन निबंध साहित्य पर भी पड़ा था और धर्म, राजनीति, समाजशास्त्र आदि विषयो के प्रसंग में सत्याग्रह, अहिंसा, सर्वोदय आदि विषयों पर गंभीर विवेचन प्रस्तुत हुए। निबंध के विचारोत्तेजक परंपरा को गांधी जी ने कई रूपों में प्रभावित किया है। यह ठीक है कि उस समय के निबंधकारों को हम प्रेमचंद या माखनलाल की तरह गांधीवादी नहीं कह सकते किंतु जैनेंद्र और सियाराम तो यहां भी अपने स्थान बनाए ही हैं। निबंध लेखकों ने गांधी जी की आध्यात्मिक साधना की सटीक व्याख्या प्रस्तुत कर उनके प्रति भावात्मक दृष्टिकोण पैदा किया। गांधी के बलिदान से हिंदी में गांधी के प्रभाव में अनेक सुंदर लेख प्रकाश में आए। महात्मा के प्रयाण के बाद शीर्षक लेख में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा था—''एक व्यक्ति कितना महान और कितना व्यापक

प्रभावशाली हो सकता है। महात्मा जी भारतीय जनता की सफल आशा-आकांक्षाओं के साक्षात विग्रह थे। मैं केवल हैरान होकर सोचता हूं कि क्या बात ऐसी रही जिसने इस शीर्षकाय मनुष्य को इतना श्रद्धेय, इतना महिमाशाली और इतना प्रिय बना दिया। महात्मा जी ने जीवित रहकर अपने कार्यों से जो आश्चर्य दिखाया था, मर कर उसका कई गुना अधिक आश्चर्य दिखाया। यह सब कैसे संभव हुआ? क्या सचमुच आध्यात्मिक शक्ति की विजय हुई है?" (कल्प लता, पृ. 31)

जैसा कि मैंने पहले निवेदन किया था कि गांधी जी के जीवन दर्शन और कर्म-सौंदर्य को जानबूझकर अस्वीकार करने वाले लेखकों ने पूर्वपक्ष के रूप में गांधी के व्यक्तित्व को अपनी कृतियों में अंकित किया है। गांधी दर्शन को इन कृतियों में व्यवहार की वस्तु न मानकर विवाद की वस्तु ठहराया गया है इनमें प्रख्यात लेखक यशपाल की कृतियों में, गांधीवाद की शवपरीक्षा, दादा कामरेड, देशद्रोही तथा "झूठा सच" का उल्लेख आवश्यक है। राहुल सांकृत्यायन की कुछ कहानियां तथा "भागो नहीं दुनिया को बदलो" तथा "आज की राजनीति" आदि उपन्यास गांधीवादी युग पर करारा व्यंग्य है। इन की प्रतिपादन शैली ने गांधी दर्शन को उपहासास्पद बना दिया है। राजेंद्र यादव ने "उखड़े हुए लोग" में गांधीवादी नेता के काले कारनामों की पोल खोली है।

गांधी जी के जीवन-दर्शन में आध्यात्म और अहिंसा का गहरा प्रभाव होने से कुछ वामपंथी लेखकों का उनके साथ तालमेज न बैठना स्वाभाविक ही था। यदि वे कवि लेखक गांधी जी और उनके विचार-दर्शन की सहज उपेक्षा करते तो शायद वे तटस्थ रह सकते थे किंतु गांधी के राजनीतिक एवं सामाजिक प्रभाव की व्यापक स्वीकृति उनको असह्य थी फलतः इस वर्ग के लेखकों ने गांधीवाद का परिहास पर गांधी-प्रभाव को परोक्ष रूप में समेट लिया। प्रगतिवाद रचनाओं के प्रारंभ में तो गांधी जी स्तुत्य माने गए परंतु मार्क्सवादी विचारधारा के प्रबल होते ही गांधी-प्रभाव का प्रत्यक्ष या परोक्ष भाव से खंडन प्रारंभ हुआ। तार-सप्तक में अहिंसा पर व्यंग्य करते हुए भारतभूषण अग्रवाल ने हिटलर प्रसंग में लिखा है—

"हिटलर बेटा, बड़ा मूर्ख है,
जो लड़ता है तुच्छ-क्षुद्र मिट्टी के कारण
क्षणभंगुर ही तो है रे, यह सब वैभव।
अंत लगेगा हाथ न कुछ, दो दिन का मेला,
लिखूं एक खत, हो जा गांधी जी का चेला।
वे तुझको बतलाएंगे आत्मा की सत्ता,
होगी प्रकट अहिंसा की तब पूर्ण महत्ता।"

गांधी दर्शन के प्रति यह विपर्यस्त दृष्टि पहले मार्क्सवादी विचारों के प्रावल्य से उत्पन्न

हुई और अब आधुनिकता के जहर ने इसे कटुतिक्त बनाने में योग दिया। गांधीवाद के इस ऋणात्मक प्रभाव के पीछे कदाचित व्यक्तिनिष्ठ चिंतन का भी कुछ हाथ रहा है। समष्टि चेतना के नारों के बीच व्यक्तिपूजा (हीरो वरशिप) को तो अंधविश्वास ठहराया गया किंतु स्वय व्यक्तिवादी बनने का अहंकार इस वर्ग के लेखक स्वयं न छोड़ सके। नैतिक श्रेष्ठता में अपूर्व आकर्षण होता है इसे ऋणात्मक प्रभाव ग्रहण करने वाले साहित्यकारों ने स्वीकार नहीं किया। इस विरोध को देखकर मुझे तो यही लगता है कि गांधी के खंडन का प्रयास गाधी के प्रभाव की सबसे बड़ी स्वीकृति है—महापुरूष की यह महान विजय है इस ऋणात्मक प्रभाव की चर्चा अधिक विस्तार मे न करना ही उचित है, अक्लमंद के लिए इशारा काफी है।

सक्षेप मे, हिंदी काव्य पर गांधीवादी प्रभाव का आकलन करने पर यह निष्कर्ष सामने आता है कि गाधी जी का प्रभाव जितनी क्षिप्रता और गंभीरता से हिंदी साहित्यकारों पर पड़ा था कदाचित उनके अवसान के बाद उतना ही द्रुतगति से वह लुप्त भी हो रहा है। मैं उन तथ्यों की ऊहापोह मे पडना नहीं चाहता जो गांधी के व्यापक प्रभाव को मिटाने मे कारण बने।

अत मे, गांधी जन्म की 125वीं वर्षगांठ के अवसर पर उनके विविध प्रभावों का स्मरण करता हुआ मैं उनकी पावन स्मृति को शत-सहस्र प्रणाम करता हूं और कविवर पंत के शब्दों में प्रार्थना करता हूं—

आओ उसकी अक्षय स्मृति की नींव बनाए।
उस पर संस्कृति का लोकोत्तर भवन उठाएं।
स्वर्ण-शुभ्रधर सत्य कलश सर्वोच्य शिखर पर
विश्व प्रेम मे खोल अहिंसा मे गवाक्षवर।

श्रद्धानत अंतिम प्रणाम करता तुमको मन,
हे भारत की आत्मा! नवजीवन के जीवन।

□

ताल

महीप सिंह

जीवन किस सुर पर बेसुरा हो जाता है और गति बेताल हो जाती है, कहना मुश्किल है। महीप सिंह की कहानी 'ताल' डॉ. भनोत के इसी बदलते स्वर और ताल की कहानी है। एक समय में प्रभावशाली व्यक्तित्व वाले डॉ. भनोत जीवन की संध्या तक आते अकेले पड़ जाते हैं। एक सुनसान खामोशी उनको घेर लेती है और वो चाहते हैं कि कोई उनकी इस खामोशी को तोड़े। पर क्या ये खामोशी वस्तुतः टूट पाती है, बेताल जिंदगी की ताल क्या है? सचेतन कहानी के प्रवर्तक एवं श्रेष्ठ कथाकार डॉ. महीप सिंह अनेक सम्मानों से सम्मानित हो चुके हैं। दिल्ली विश्वविद्यालय के खालसा कॉलेज से पदमुक्त होकर अब वो पूरा समय लेखन को दे रहे हैं।

सब कुछ ठीक ठाक चल रहा था। हल्की 'कैंडल लाइट' जैसी सहमी-सहमी थिरकती हुई शाम में सभी चेहरे जो एक-दूसरे से खूब परिचित थे, फिर से परिचित हो रहे थे। एक-दूसरे को देखकर आंखें झपकाना, होंठों पर मुस्कुराहट बिखेरना, हाथ मिलाते समय . हैलो ... कैसे हैं ... कहना ... उत्तर में हैलो . . आप कैसे हैं सुनना उतना ही सहज था जितना सांस लेना।

कुछ देर पहले ही सिंह साहब की खूबसूरत कोठी के दालान में बिछे विलायती गलीचों, उनके ऊपर बिछी दूधिया चादरों और दीवारों के साथ सटे गांव तकियों का सहारा लेकर सभी लोगों ने सुप्रसिद्ध नृत्यांगना उषा राय का कत्थक नृत्य देखा था। सूरदास के पद—'बूझत स्याम कौन तू गौरी' को कुमारी राय ने बड़ी भावपूर्ण मुद्राओं के साथ अभिनीत किया था।

फिर सब लोग बाहर लॉन में आ गए थे। तुरेदार पगड़ी और लाल पट्टी वाली सफेद जैकेट-पैंट वाले सजे-धजे बेरे ट्रे में ह्विस्की के गिलास लिए एक के सामने आ रहे थे और बहुत धीरे-धीरे पूछ रहे थे ... वाटर ... सोड़ा ... । दूसरे बैरे स्नेक्स लेकर घूम रहे थे।

''सिंह साहब साल में ऐसी दो-एक पार्टियां किसी न किसी बहाने जरूर देते हैं।''

मैंने देखा अमित की आंखों का सरूर गहरा हो चला है।

मैं कुछ बोला नहीं। सिंह साहब के पास बहुत कुछ है। एक्सपोर्ट के धंधे में पिछले कुछ सालों में उन्होंने बड़ी दौलत कमाई है। जब मैं उनकी कोठी में घुसा था, सामने पांच-छह लंबी कारें खड़ी दिखाई दी थीं। उनकी पत्नी सुजाता सिंह के चेहरे का लावण्य सभी महसूस करते हैं। दो बेटियों का जवान हो जाना और बेटे का अमेरिका में कंप्यूटर साइंस के अध्ययन के लिए जाना उनके चेहरे की गर्वीली मुस्कुराहट को सोने की भरी हुई गागर जैसी आभा देता है, जिसके अंदर का जल छलकता नहीं, सिर्फ हल्की-हल्की लय का आभास देता है।

किंतु सिंह साहब के पास सब कुछ तो नहीं है। उन्हें हमेशा यह महसूस हुआ है कि उन्हें उतने लोग नहीं जानते जितनों को जानना चाहिए। इम्पोर्ट-एक्सपोर्ट वाली दुनिया में लोग उन्हें जानते हैं, उनका लोहा भी मानते हैं। लेकिन यह दुनिया कितनी छोटी है। उनके पास दौलत है, लेकिन इतनी तो नहीं कि दिल्ली के पहले दस-बीस या पचास दौलतमंदों में उनकी गिनती हो सके। अखबारों में कितने ऐरा-गैरा लोगों की तस्वीरें छपती हैं। टी.वी. पर कैसे-कैसे लोगों के इंटरव्यू आते हैं। लेकिन यह दुनिया उनका कोई रूतबा नहीं मानती।

अपने घर पर शानदार पार्टी देना उन्हें अच्छा लगता है। इसके लिए उनके पास अलग-अलग किस्म की सूचियां हैं—इम्पोर्ट-एक्सपोर्ट के धंधे के प्रमुख व्यक्तियों की, राजनीति और सामाजिक कार्यों मे लगे ऐसे लोगों की जिनका नाम है, दबदबा है, मानसम्मान है। एक सूची उनके पास विदेशी नागरिकों की भी है जिनमें राजनयिक हैं, विदेशी बैंकों के बडे अफसर हैं, बहुराष्ट्रीय व्यापारिक संस्थाओं के प्रतिनिधि हैं।

एक चौथी सूची भी है। इसमें लेखक हैं, पत्रकार हैं, रेडियो-टी.वी. के अधिकारी हैं, नृत्य-संगीत के कुछ जाने-माने लोग हैं। कुछ ऐसी अवकाश प्राप्त हस्तियां हैं जो बीते हुए कल में बहुत महत्वपूर्ण थीं—किसी कारपोरेशन का चेयरमैन, किसी बैंक का मैनेजिंग डायरेक्टर, किसी यूनीवर्सिटी का वाइस चान्सलर ... आदि ... आदि।

सुजाता जी सभी तरह की पार्टियों में बहुत रूचि लेती हैं। उन्हें भी वह सब अच्छा लगता है जिसे 'सोशलाइजेशन' कहते हैं। सामाजिक कार्यों में लगी हुई बहुत सी संस्थाओं से वे सिर्फ जुड़ी ही नहीं है उनमें से कइयों के ओहदे भी वे संभाले हुए हैं।

यह भी सच है कि उनकी सबसे ज्यादा रूचि इस चौथी सूची में है। बाकी तीन तरह की पार्टियों में एक खास किस्म से रिजर्व रहना उनके लिए जरूरी होता है। लेकिन चौथी सूची के लोगों की पार्टी होती है, वह बहुत खुल जाती हैं, खूब चहकती हैं, खूब

बोलती हैं, खूब हंसी-मजाक करती हैं। इस पार्टी मे आए सभी लोग उन्हें बिल्कुल अपने दोस्तों जैसे लगते हैं।

''तुम्हारी टेलीफिल्म मैंने देखी थी'' उन्होंने बेरे की ट्रे से ह्विस्की वाला गिलास लेकर नम्रता के गिलास में उलटते हुए कहा—''बुहत अच्छी थीम थी।''

नम्रता बड़ी विनम्रता से बोली—''टेलीफिल्म आपको अच्छी लगी, यह जानकर मुझे बड़ी खुशी हुई ...।'' फिर वह हंसती हुई बोली—''लेकिन मैं इतना नहीं पीती जितना आप समझती हैं।''

सुजाता जी मुस्कुराई—''मैं चाहती हूं . तुम खूब लिखो। आज की पार्टी के लिए सिंह साहब से कहा था—स्कॉच का इतजाम होना चाहिए। जब वे अपने दोस्तों और बिजनेस सर्कल के लोगों को बुलाते हैं तो स्कॉच के अलावा और कोई चीज़ सर्व नहीं करते। मैंने कहा यह सब नहीं चलेगा। उनके लिए बढ़िया चीज और मेरे दोस्तों-लेखको, कलाकारों के लिए लोकल ह्विस्की . यह गलत बात है।''

मैं पास खड़ा उनकी बाते सुन रहा था। उनके आने ने पहले नम्रता मुझसे अपने नए छपे उपन्यास की चर्चा कर रही थी। बात अभी बीच मे ही थी कि वे किसी तरफ से चहकती हुई आ गई थीं। यह उन्हीं की पार्टी थी। स्वाभाविक था उनकी उपस्थिति को वहा आया हर व्यक्ति न केवल महसूस कर रहा था, उन्हे इस बात का अहसास भी करा रहा था।

सुजाता जी को यह अच्छा लगता था।

मेरे पास केवल आकर खड़ा हो गया था। वह बोला—''सुजाता जी, वह शाम बड़ी ही सुहावनी होती है जब आप ऐसा आयोजन करती हैं। हमारे जैसे लोगों को तो 'स्कॉच' आंख में डालने भर को भी नसीब नसीब नहीं होतो। इसलिए आज पी हुई ह्विस्की का स्वाद जीभ पर उस दिन तह महसूस होता रहेगा तब तक आप दुबारा नहीं बुलाएंगी।''

केवल की बात सुनकर हम सभी लोग ठहाका मार कर हंसे थे। सुजाता जी की हंसी सब से ऊपर गूंज रही थी। उन्होंने बैरा को बुलाया था, उसकी ट्रे से दो गिलास उठाए थे और उन्हें केवल के गिलास में उडेलती हुई बोली थीं—''स्वाद को ज्यादा समय तक बरकरार रखने के लिए।''

कुछ क्षण बाद उनकी गूंजती हुई हंसी कुछ दूर खड़े तीन-चार लोगों के बीच से आ रही थी।

फिर एकाएक मुझे महसूस हुआ, मैं अपना गिलास पकड़े अकेला खड़ा हूं। नम्रता दो-तीन महिलाओं में घिरी हुई उन्हें शायद अपने नये उपन्यास के बारे में बता रही थी। केवल वेटर के पीछे-पीछे चल रहा था और मौका मिलते ही ट्रे में से एक-दो गिलासों की ह्विस्की को अपने गिलास में डाल लेता था। उसका डेढ़ पसली शरीर हवा में झूलता हुआ दिखाई दे रहा था। उसकी सरकंडों जैसी पतली-पतली टांगे बुरी तरह लड़खड़ा रही थीं।

मैं सोचने लगा—केवल अब अपने घर वापस जाने की स्थिति में नहीं रहा। खाना शुरु होने से पहले यह पता नहीं और कितनी पी जाएगा। फिर वह यहीं-कहीं लुढ़क जाएगा। पार्टी के बाद सुजाता जी को अपने ड्राइवर के जरिए गाड़ी में, उसे उसके घर में भेजना पड़ेगा।

तभी न जाने किस तरफ से वे मेरे पास आ खड़ी हुई।

"तुम देख रहे हो .. वह सामने ... अमलतास के पास ... अंधेरे में कुर्सी पर कौन बैठा है।"

मैंने बड़े ध्यान से उस तरफ देखा। कुर्सी पर एक व्यक्ति काली अचकन पहने चुपचाप बैठा हुआ था। उसके हाथ में भी एक गिलास था, लेकिन वैसे नहीं जैसे ह्विस्की पीने वाले हाथों में था। मुझे एक क्षण लगा। मैं बोला—"वे .. वे तो डाक्टर भनोत हैं।"

मैं हिल सा गया। सचमुच डा. भनोत एकदम अकेले बैठे थे। इस पार्टी में ऐसे कितने ही लोग थे जिन्हें एक समय इस बात का गर्व था कि वे डाक्टर भनोत के चहेते थे। आज वे लोग अपने आप में पूरी तरह डूबे हुए थे।

वे बोलीं—"इस बूढ़े की ओर ध्यान देने वाला आज कोई नहीं है। वह सामने खड़ा है ना रावत . और वह विश्व कुमार ..और वह चिरंजीव ... इन सभी पर अगर डा. भनोत का वरदहस्त न होता तो आज ये सड़कों पर चप्पलें चटकाते दिखाई देते।"

मुझे याद आया। दिल्ली आए मुझे कुछ दिन ही हुए थे। उस समय डा. भनोत जनरल मैनेजर थे। मैं जैसे ही दफ्तर पहुंचा था, मेरे कान मे एक बात फूंक दी गई थी—"सुखी रहना चाहते हो, प्रमोशन लेना चाहते हो और दिल्ली में टिके रहना चाहते हो तो डाक्टर भनोत के नाम को हर समय उसी तरह याद रखना जैसे भक्त प्रभु को याद रखता है।"

एक और बात भी मुझे बताई गई थी—"इस विशाल संगठन में एक और आदमी भी है—उसका नाम है इद्रजीत ... इद्रजीत सिंह। यह आदमी सचमुच अपने आपको इंद्रजीत समझता है .. रावण का पुत्र मेघनाद। अपनी इस खुशफहमी मे उसने भनोत साहब के सामने सिर उठाने की कोशिश की। नतीजा यह हुआ कि उससे जूनियर लोग प्रमोशन लेकर आगे बढ़ गये और ये अक्खड़ साहब कई साल से अपनी शिकायतों का पलिंदा लेकर कभी ई.डी. और कभी चेयरमैन के पास धक्के खाते घूम रहे हैं ... कोई इन्हें घास नहीं डालता। इसलिए इस आदमी के पास भी नहीं फटकना। भनोत साहब के अपने जासूस हर सैक्शन में हैं। अगर उन्हें यह पता लग जाए कि फलाने आदमी का इद्रजीत से मिलना-जुलना है तो समझो उसका नाम उनकी काली सूची में दर्ज हो गया।"

मुझे सब कुछ बहुत अजीब सा लगा था। मेरे मन में डाक्टर भनोत के लिए बड़ा आदर भाव था! वे जनरल मैनेजर हैं इसका रोब तो था लेकिन वे बड़े कुशल प्रशासक हैं इस बात की चर्चा भी मैंने बुहत सुनी थी। उनके संबंध में एक खास बात मैंने यह सुनी थी कि प्रोफेशनल काम्पीटैंस के साथ ही वे बड़े विद्वान हैं। उनकी अपनी निजी लायब्रेरी

किसी अच्छी-खासी पब्लिक लायब्रेरी से कम नहीं।

अब जो कुछ मैं सुन रहा था वह किसी तानाशाह का रूप जैसा लगता था, किसी ऐसे जमींदार का जो अपने मुसाहिबों के लिए दाता होता है और अपने विरोधियों के लिए निर्मम शासक बन जाता है।

मैं डाक्टर भनोत को लेकर अपने आप मे ही सिकुड़ गया था। मुझसे उनका कोई सीधा वास्ता भी नहीं पड़ता था। उनके और मेरे बीच में कई सीढ़ियां और थीं और मेरी कोशिश यही रहती थी कि मैं इन सीढ़ियों के चढ़ने-उतरने मे ही अपनी गतिविधियों को सीमित रखूं।

लेकिन एक दिन उनसे मेरी टकराव वाली स्थिति पैदा हो गई।

मैं अपने दफ्तर मे जिस रैंक पर था उससे प्रमोशन होना था। इस रैंक पर हम पाच व्यक्ति काम कर रहे थे। इस समय पदोन्नति सिर्फ तीन की होनी थी। मैं आश्वस्त था क्योंकि वरिष्ठता क्रम में मेरा नंबर तीसरा था। मैं इसलिए और भी आश्वस्त था कि इस दफ्तर की जितनी भी विभागीय परीक्षाएं थीं, मैंने बड़ी सफलतापूर्वक सब पास कर ली थीं। मेरे काम मे भी कोई कमी नहीं थी और सब से बड़ी बात कि मैंने अपने विशाल व्यापारिक सगठन में काम करने वाले कर्मचारियों के लिए पुस्तक लिखी थी, जो उनकी कार्य कुशलता के बढ़ाने में बहुत सहायक हो सकती थी। इस पुस्तक को लिखने के लिए मैंने विदेशों में छपी इस विषय की अनेक पुस्तकों को पढ़ा था। मेरे इस कार्य की चर्चा एक्जीक्यूटिव डायरेक्टर और चेयरमैन तक पहुंच चुकी थी और स्वयं डाक्टर भनोत ने मुझे बधाई दी थी।

लेकिन जब हम पाचों व्यक्तियों के इंटरव्यू हुए और उसके बाद जो पैनल बना, वह मेरे जीवन का सबसे बड़ा आघात था। इटरव्यू बोर्ड के चेयरमैन डाक्टर भनोत थे और दो वरिष्ठ अधिकारी—असिस्टेंट जनरल मैनेजर और डिप्टी जनरल मैनेजर बोर्ड के सदस्य थे। पैनल में मुझे पाचवें नबर पर रखा गया और हममें जो जूनियर था, उसे तीसरे नंबर पर रख दिया गया था।

मेरे लिए सवाल यही नहीं था कि मुझसे जूनियर व्यक्ति की इस समय पदोन्नति हो जाएगी और मैं इस दौड़ में कई वर्षों तक पिछड़ जाऊंगा। मुझे लगा था कि मैं बुरी तरह अपमानित हो गया हूं। यह बात मुझे इसलिए भी बहुत साल रही थी कि पांचवे नंबर का व्यक्ति डाक्टर भनोत का चहेता समझा जाता था, और उन्होंने मेरी कीमत पर उसे आगे बढ़ाकर पदोन्नत करने का फैसला कर लिया था।

सारे दफ्तर में यह बात सुरसुराते हुए धुएं की तरह फैल गई। दबी जुबान में सभी लोग मेरे प्रति हमदर्दी प्रकट कर रहे थे, और मान कर चल रहे थे कि मुझे अपमान के इस अहसास को कड़वे घूंट की तरह पीना पड़ेगा।

मुझे याद है, मैं बहुत तिलमिलाया था। पत्नी को मैंने कुछ नहीं बताया था किंतु

सारी रात मैं बड़ी बेचैनी से अपना सिर पटकता हुआ पलंग पर सोने की कोशिश करता रहा था।

दूसरे दिन मैं कपूर साहब से मिला जो मेरे इमीडियेट बॉस थे।

"मेरे प्रति अन्याय हुआ है, कपूर साहब।" मेरे शब्दों में कुछ गुस्सा था, कुछ विनय, कुछ हताशा और कुछ दीनता।

"मैं मानता हूं।" वे बहुत धीरे-धीरे बोले थे—"आप के प्रति अन्याय हुआ है।"

उनकी ऐसी निर्लिप्त, निस्संग मुद्रा को देखकर मुझे कुछ आश्चर्य हुआ। फिर एकाएक गहरी खीझ उभर आई।

"क्या मुझे इस अन्याय को स्वीकार कर लेना चाहिए ...?"

इस अपमान को पी जाना चाहिए ...?"

"इसके अलावा चारा भी क्या है।" उन्होंने उसी निस्संगता या बेचारगी में कहा—"आप जानते ही हैं कि यह फैसला भनोत साहब का है।"

तब एक गुस्से की लहर तेज़ आग की तरह मेरे अंदर उतर गई थी। "कपूर साहब, मिस्टर भनोत इज़ नॉट गॉड।"

वे उसी मुद्रा में बोले—"आपको मालूम नहीं ... ही इज़ मोर देन गॉड।"

"देन आई विल चैलेंज गॉड।" कह कर मैं उनके कमरे से बाहर निकल आया था।

फिर मैं डाक्टर भनोत से भी मिला था। मैंने कहा था—"सर, मेरे प्रति अन्याय हुआ है।"

मेरी बात सुनकर उनकी भौंहों में बल पड़ गए थे—"यह न्याय-अन्याय का फैसला करने वाली कोई कचहरी है क्या? सिलेक्शन कमेटी ने जैसा ठीक समझा वैसा फैसला कर दिया।"

मैंने हिम्मत बटोर कर कहा था—"यह फैसला सिलेक्शन कमेटी का नहीं ... आपका है। आप किसी व्यक्ति को फेवर करना चाहते हैं ... मेरी बलि देकर।"

उनकी आंखें लाल हो गई थीं और होंठ फड़फड़ाने लगे थे—"तुम मुझ पर तोहमत लगा रहे हो।"

मैं कुछ क्षण चुप रहा था। सचमुच मैं कुछ डर भी गया था। फिर मैं धीरे से बोला था—"मैं इस फैसले के खिलाफ रिप्रिजेंट करना चाहता हूं।"

उन्होंने सामने पड़ी फाइल के ऊपर से नजरें नहीं उठाई थीं।

"तुम रिप्रिजेंट करोगे ...? मेरे फैसले के खिलाफ ...? ठीक है ... करो ... और उसके नतीजे भी सोच लो।"

कहकर जिस ढंग से उन्होंने अपने सामने पडी फाइल बंद कर दी थी, उसका मतलब था—चलो .. बाहर निकलो ...।

कुछ मित्रों ने मुझे चुप हो जाने की सलाह दी थी। उनका तर्क था—तुम्हारे रिप्रिजेंटेशन का कोई लाभ नहीं होगा। भनोत साहब के सामने खड़े होने की किसमें जुर्रत है?

मैंने चेयरमैन के नाम एक रिप्रिजेंटेशन लिखा। किसी तरह उनके पी ए को खुश करके मैं उनसे मिलने मे कामयाब हो गया। देखते ही उन्होंने पहचान लिया—

"आपकी किताब मैंने पढ़ी है वेरी इन्सट्रेस्टिंग .. एण्ड यूजफुल। ऐसी किताबें लिखी जान्री चाहिए।"

मैंने अपना पत्र उनके सामने रख दिया। उन्होंने उसे पढ़ा और गंभीर हो गए। बोले—"देखता हूं।"

कुछ दिन बात बोर्ड मिटिंग हुई। सभी मुद्दों के निपट जाने के बाद विभिन्न सिलेक्शन कमेटियों द्वारा लिए गए फैसलों को बोर्ड के सामने उसकी औपचारिक स्वीकृति के लिए रखा गया। अन्य सभी फैसले तो स्वीकृत हो गए किन्तु जब हमारे विभाग का केस आया तो चेयरमैन ने कहा—"इसके संबंध मे अंतिम निर्णय बाद मे लिया जाएगा।"

मैंने सुना कि चेयरमैन की इस बात पर बोर्ड मिटिंग मे उपस्थित भनोत साहब बहुत भनभनाए थे। उन्होंने सभी मैम्बरों को संबोधित करते यह भी कहा था कि यह फैसला विधिवत गठित सिलेक्शन कमेटी का है, इसलिए इसे टालने की क्या जरूरत है।

लेकिन चेयरमैन ने यह कह कर मीटिंग समाप्त कर दी थी कि इस संबध मे मुझे कुछ समझना-बूझना है। आखिर ऐसी जल्दी भी क्या है।

फिर यह फैसला लगभग दो साल तक लटका रहा। पांचवें नबर से तीसरे नबर पर लाए गए मिस्टर सक्सेना इस संगठन को छोड़कर कहीं और चले गए। शेष बचे चारों की पदोन्नति कर दी गई।

डाक्टर भनोत बाद मे इ.डी बने और फिर एक-डेढ़ साल चेयरमैन हो कर रिटायर हो गए। जब तक वे रहे, मेरी कोई और पदोन्नति नहीं हुई।

किंतु मुझे याद नहीं आता कि उन्होंने मुझसे बदला लेने या परेशान करने की दृष्टि से कोई काम किया हो। जब भी वे मेरे सामने आए मैंने बड़े आदर पूर्वक उनका अभिवादन किया। उन्होंने भी अपनी सूनी-सूनी और बहुत व्यस्त नजर आने वाली आंखों से मुझे देखा और रूटीन ढंग से पूछा—"कैसे हो?"

मैंने सदा एक वाक्य दोहराया—"आपकी कृपा है।"

डाक्टर भनोत की गिनती भी ऐसे बड़े लोगों में थी। मैं उनके इस बड़प्पन का सदा कायल रहा। मैंने उनके एक फैसले के खिलाफ मोर्चा लिया था। उसमें कुछ हद तक कामयाब भी हुआ था। लेकिन मैं उनकी शान के खिलाफ कभी नहीं बोलता था। सामने पड़ने पर मेरे हाथ जुड़ जाते थे और नजरें झुक जाती थीं।

वही डाक्टर भनोत आज एक अंधेरे कोने में चुपचाप, कहकहों और ठहाकों की अनंत लहरों के थपेड़े खाते हुए एक जड़ शिलाखंड की तरह बैठे हुए थे।

सुजाता जी बोलीं—"दो-चार मिनट के लिए तुम्हीं उन्हें अपनी कम्पनी दे दो" इससे

पहले कि कोई और व्यक्ति आकर मुझे घेर ले, मैं उनकी तरफ बढ़ गया।

"नमस्कार डाक्टर साहब ...।"

उन्होंने मुझे देखा। मुझे लगा चश्में के अंदर से उनकी आंखें टिमटिमाई हैं।

"कैसे हो?"

"आपकी कृपा है" मैंने कुछ अधिक विनम्रता से कहा।

"आपका स्वास्थ्य कैसा है?

उनके चेहरे पर मुस्कुराहट उभर आई—"ठीक हूं।"

मैं कुर्सी खींचकर उनके पास बैठ गया।

एकाएक मुझे लगा, मैं उनसे क्या बात करूं। फिर मुझे लगा, उनसे कुछ चुहलबाजी ही क्यों न की जाए। चुहलबाजी और डा. भनोत 3 और 6 की तरह कभी एक-दूसरे के सामने न आने वाले अंक थे। पर अब स्थिति बदल गई थी, इसलिए अंकों को 6 और 3 की स्थिति में लाया जा सकता था।

"डाक्टर साहब . कभी आपने शराब पी है?" मैंने उनकी आंखों में झांकते हुए पूछा।

उन्होंने मुझे घूर कर देखा—"नहीं ... नहीं . कभी नहीं।"

"कभी ब्रांडी भी नहीं पी?"

"क्यों...? ब्राडी शराब नहीं होती?"

"देखिए ...।" मैंने कहा—"यहां खड़े सभी लोग ह्विस्की पी रहे हैं ... स्कॉच ह्विस्की जो बहुत महंगी होती है। कई महिलाओं के हाथ में जो आप गिलासों में पड़ा तरल पदार्थ देख रहे हैं ना ... वह जिन है ... ड्राईजिन। इसे महिलाएं पीती हैं। पर ब्रांडी तो बच्चों को ठंड से बचाने के लिए पिला दी जाती हैं। आप ने बचपन में ब्रांडी जरूर पी होगी।"

"कैसी बातें करते हो।" उनके चेहरे पर बड़ी लजीली मुस्कुराहट उभर आई—"इस मामले में मेरे माता-पिता दोनों ही बहुत कट्टर थे। मैंने भी कभी समझौता नहीं किया। अपने बच्चों के होठों से मैंने इस चीज़ को कभी छुआया तक नहीं।"

मैं थोड़ा और वाचाल हो गया—"आप तो गए-गुजरे जमाने के इंसान हैं डाक्टर साहब। शराब बुरी चीज सही ... पर ऐसी भी क्या बुरी है कि उसे होठों से छुआया भी न जा सके।" मैं अपनी मुद्रा में थोड़ा सा शरारत का रंग भरा—"कभी कभार एक-आध पैग पी लेने में कोई बुराई नहीं है डाक्टर साहब।"

वे हंस दिए—"तुम काफी शैतान दिखते हो। मुझे फंसाने की कोशिश कर रहे हो।"

उनका हंसना मुझे अच्छा लगा। कुछ देर पहले उन्हें अंदर की उदासी और बाहर के अंधेरे ने घेर रखा था। ऐसा लगा वे उससे बाहर आ रहे हैं।

मैं भी हंसा—"सुनिए ... आपके लिए एक पैग बना लाऊं ...? एकबार पीकर तो देखिए ... यहां कोई देख नहीं रहा है। आखिर कल आपको भी धर्मराज के सामने हाजिर

होना पड़ेगा। क्या जवाब देंगे उसे आप . ? कभी जिंदगी में एक घूंट भी नही पी?"

डाक्टर भनोत इतनी जोर से हंसे कि दूर-दूर तक खड़े लोगों का ध्यान उनकी तरफ चला गया। वे हंसते ही चले जा रहे थे और लोग अपनी गपशप छोडकर उनके चारो ओर आ खड़े हुए थे।

"अरे डाक्टर साहब . क्या बात हुई?" सुजाता जी बड़े आश्चर्य से उन्हे देख रही थीं—"इतना खुलकर हंसते हुए तो आपको कभी देखा नहीं"

डाक्टर भनोत ने एक धौल मेरी पीठ पर जमाई—"ये .. ये . क्या नाम है इसका . मनोहर .. बड़ा ही बदमाश है ... अव्वल दर्जे का शैतान।"

"आखिर हुआ क्या?" सुजाता जी ने बड़ी जिज्ञासा भरी आंखो से मुझे देखा। वे फिर बड़ी जोर से हंसे—"यह मुझसे कहता है .. आपने कभी शराब नही पी तो धर्मराज को क्या जवाब देंगे .. कहता है आप के लिए पैग बना लाऊ चुपके से पी लीजिए कोई देख नहीं रहा है।"

फिर ऐसे ठहाके लगे कि सारी महफिल उनके इर्द-गिर्द सिमट आई। डाक्टर भनोत हंस रहे थे और वह रंगीन शाम जैसे उन्हीं की ताल पर थिरक रही थी। □

एकलव्य का अंगूठा

डा. परिमला सोमेश्वर

एकलव्य के अंगूठे आज भी कटते हैं। आज द्रोणाचार्य प्रत्येक विश्वविद्यालय मे आसीन मिल जाएंगे। प्रोफेसर रंगराव के माध्यम से तेलुगु की प्रसिद्ध कथा लेखिका डॉ. परिमला सोमेश्वर ने शिक्षा जगत से जुड़े हुए विषयों पर महत्वपूर्ण सवाल उठाए हैं। तेलुगु में 'पद्म श्री प्रोफेसर' के नाम से प्रकाशित इस कहानी के चरित्र हमारे अपने आसपास के ही लगते हैं। विज्ञान में शोध के क्षेत्र में शोधार्थियों का जो अप्रतिम शोषण होता है उसी की करुण गाथा है यह कहानी।

शाम के चार बजे थे।

शीतकाल की शीतल धूप खिडकी के द्वारा भीतर प्रवेश कर रही थी। प्रोफेसर रंगाराव सोफे पर बैठकर उस धूप का आनंद ले रहे थे। आंखें बंद थीं। वहां एक पाईथोलोजी का लेबोरेटरी थी। प्रात नौ बजे से शाम के छः बजे वे वहीं अपने शोधार्थियों को निर्देश देने मे व्यस्त रहते थे। उन्होंने जम्हाई ली और अपने शोधार्थियों पर नजरें डालीं।

उनके निर्देशन मे तीन शोधार्थी अपने-अपने कार्य में व्यस्त थे। उनके सामने माईक्रोस्कोप थे। वे स्टूल पर बैठकर ध्यान से अपने कार्य में लीन थे। प्रोफेसर साहब के निर्देशन मे शोध कार्य करने वाले बडे मेहनती व होनहार होते थे। वे रात-दिन अपने कार्य मे लगे रहते थे। तीन-चार वर्ष मे ही वे डाक्टरेट की डिग्री प्राप्त कर स्वदेश या विदेश में उच्च पदों पर नियुक्त हो जाते थे। प्रोफेसर साहब के कई ऐसे विद्यार्थी थे। उनके निर्देशन मे अब तक सत्तर पचहत्तर विद्यार्थियो ने डाक्टरेट की डिग्री हासिल की थी।

प्रोफेसर साहब की एक खास बात थी। वे जिसे चाहे उसे अपने विद्यार्थी के रूप में अपनाते न थे। शोध कार्य के लिए वे उन्हीं को चुनते थे, जो बुद्धिमान हो, मेहनती और लगन के साथ अपने कार्यों में लीन होता हो। सबसे बढ़कर वे विनयशील और नम्र विद्यार्थियों के प्रति स्नेह भाव दर्शाते थे। स्नेह भाव दर्शाने वाले, आज्ञापालक एवं सदा

'जीहां, जीहां' कहने वालों पर उनका अपार प्रेम होता था। विश्वविद्यालय के हर विभाग में शोधार्थी के रूप में कार्य करना और स्थान पाना आसान था, पर बोटनी और वह भी पाईथोलोजी मे स्थान पाना कोई सरल कार्य नहीं था। प्रोफेसर रंगाराव के आगे प्रथम श्रेणी मे उत्तीर्ण विद्यार्थी भी घबराते थे। उनके कड़े अनुशासन से घबराकर कई विद्यार्थी तो शोध कार्य छोड़कर भाग जाते थे।

प्रोफेसर की जिन पर कृपा दृष्टि होती थी, उनका उस विश्वविद्यालय मे बड़ा आदर होता था। ऐसे डाक्टरेट प्राप्त लोगों को नौकरी देना कई सस्थाएं अपना अहोभाग्य समझती थीं। कभी-कभी उनके लिए कई संस्थाएं और विश्वविद्यालय विशेष रूप से नौकरियो का प्रबंध भी करते थे।

प्रोफेसर रंगाराव की नींद खुली। उस समय पाच बजे थे। शीतकाल था। पाच बजे ही सारा वातावरण ठंडा पड गया था। बुढ़ापे के कारण उनका शरीर ठड से कांपने लगा था। हालांकि वे फुल सूट मे थे, फिर भी कपन कम न हुआ। दोनों हथेलियों को रगड़ते हुए वे कुर्सी से उठ खड़े हुए।

प्रोफेसर ने जम्हाई ली। उन्होंने शोधार्थियों की ओर देखा। वे अपने कार्य मे लीन थे। उन्हे अपने काम के अतिरिक्त दूसरी बातों मे कोई मतलब नही था। वे जानते थे कि उनके प्रोफेसर नींद पर काबू पाने मे असमर्थ है। उनकी आदत से वे भली-भांति परिचित थे। वे यह भी जानते थे कि उनका भविष्य प्रोफेसर के हाथ मे है। इस सत्य से परिचित होने कारण वे प्रोफेसर के किसी भी कार्य मे बाधा नही डालते थे। उन्हे अप्रसन्न करके अपने पैरों पर स्वयं कुल्हाड़ी मारने के पक्ष मे न थे। इस कारण वे चुपचाप अपने कार्य मे मग्न थे।

प्रोफेसर का व्यक्तित्व बडा आकर्षक था। वे ऊंचे कद के थे और सदा फुल सूट मे रहते थे, बडी-बड़ी मूछे थीं और उनकी आंखे लालिमा से युक्त होती थीं। उनके इस रूप का आतंक विद्यार्थियो पर छा जाता था। विद्यार्थी उनसे सभल-संभल कर बोलते थे और साथ ही उनके प्रति अपार आदर भाव दिखाते थे। डर के साथ-साथ विनय प्रदर्शन भी करते थे। पहली नजर मे ही उनके प्रति आदर की भावना जन्म लेने लगती थी।

इंटरव्यू के समय उनके अटपटे प्रश्नों के कारण शोधार्थी का सिर चकरा जाता था और उनके प्रति आदर की भावना और भी बढ़ जाती थी। बड़ी ही कठिनाई से उनके शिष्य बनने का मौका मिलता था। तभी उनके अवगुणों से परिचय पाकर भी उनके शिष्य मुह नहीं खोलते थे। प्रोफेसर साहब वास्तव में कामचोर, सुस्त, अयोग्य और विषय के ज्ञान से अनभिज्ञ थे। शोधार्थियो को अपने डाक्टरेट की डिग्री से मतलब था। उनकी नुक्ताचीनी करने से क्या लाभ? प्रोफेसर साहब आकार-प्रकार मे ऐसे लगते थे, जैसे कोई महान् वैज्ञानिक हो, पर अदर से बिल्कुल खोखले थे। यह जानकर भी कोई उनका अनादर या दुस्साहस करने का प्रयास नहीं करता था। सभी उनके प्रति आदरभाव दर्शाते थे और डिग्री

प्राप्त करके चले जाते थे।

बाहर जाकर भी कोई विद्यार्थी उनका अपमान करने का साहस नहीं करता था। उन्हें डर था कि प्रोफेसर की निंदा से उसकी डिग्री का स्तर गिर जाएगा। कोई उन्हें कहीं स्थान नहीं देगा। इसी भावना के कारण हर कोई उनकी तारीफ में कोई कमी नहीं करता था। यह भी कहते हुए वे गर्व का अनुभव करते थे कि हम प्रोफेसर रंगाराव के शागिर्द हैं। उनके शागिर्द इंटर , में उनका नाम इस ढंग से लेते थे कि इंटरव्यू लेने वाले बड़े आदर के साथ उनका चयन करने में सकोच नहीं करते थे।

प्रोफेसर के नाम की इतनी धाक थी।

उनके प्रोफेसर बनने के पीछे भी एक रोचक बात छिपी हुई थी। वे बी.एस.सी. में चार बार अनुत्तीर्ण रहे। पाचवी बार बड़ी मुश्किल से बी.एस.सी. का बेड़ा पार कर गए। किसी बडे सज्जन की सिफारिश के बल पर उन्हे एम.एस.सी. में स्थान मिला। किही हाल वे एम.एस.सी. में तृतीय श्रेणी मे उत्तीर्ण हो गए। उनकी खुशी का ठिकाना न रहा। वे आगे भी पढ़ना चाहते थे।। पैसे की कमी न थी। वे आगे की पढ़ाई के लिए इंगलैण्ड गए। वहां उन्होंने एक साईंटिफिक कंपनी में नौकरी प्राप्त की। पांच साल तक वे डाक्टरेट के लिए जी तोड मेहनत करते रहे। भाग्य ने साथ दिया और किसी तरह उन्हे डिग्री मिल गई। भारत लौटकर विश्वविद्यालय मे बॉटनी विभाग मे रीडर बन गए। उस विश्वविद्यालय में प्रोफेसर को छोडकर किसी को विदेशी डिग्री हासिल न थी। उसी के बलबूते पर अल्पकाल में ही वे प्रोफेसर बन गए। चयनकर्त्ताओं ने सीनियरिटी की परवाह न की। प्रोफेसर के जीवन के सबंध मे बहुत कम लोग जानते थे। जो उन्हे जानते थे वे अब दूर-दूर के प्रदेशों में काम कर रहे थे। इस कारण उनका नाम और यश बहुत बढ़ गया। अल्पकाल में ही उनकी कीर्ति चारो ओर फैल गई। वे बहुत बड़ी किस्मत के धनी थे।

प्रोफेसर साहब ने अंगड़ाई ली। इधर से उधर वे टहलने लगे। कुछ समय बाद वे शकर नाम शोधार्थी के पास गए।

"कहो शंकर, क्या हो रहा है?" कहते हुए उन्होंने शंकर पर अपना हाथ रख दिया।

शकर अपने कार्य मे डूबा हुआ था। प्रोफेसर के हाथ के स्पर्श से वह उठ खड़ा हुआ। उसने कहा— "आपने जो स्पेसिमैन दिया था, चार दिन से मैं उसे स्टडी कर रहा हूं। अब तक उसके स्ट्रक्चर का पता न लगा।" उसने अत्यंत विनम्रतापूर्वक उत्तर दिया।

"ट्राई अण्ड मी . " कहते हुए वे अन्य शोधार्थियों की ओर बढ़े। उन्होंने उनसे भी कुछ सवाल किए। सोफे पर बैठकर उन्होंने घडी पर नजरे डाली। पांच बजकर पच्चीस मिनट हो रहे थे। बैठे-बैठे वे निर्देश दे रहे थे। अचानक उनकी आंखें शंकर पर जाकर रूक गयी। वे उसे बडी बारीकी से देखने लगे। शंकर एक होशियार छात्र था। ऐसे तो प्रोफेसर के सारे छात्र बहुत होशियार ही होते थे। पर शकर की बात तो कुछ और ही थी।

वह फंगस से संबंधित एक प्लांट की स्टडी कर रहा था। वह खेतों के लिए शाप के समान था। इस कारण शंकर बड़े ध्यान से उसका स्टडी मे लगा हुआ था। उसके इस शोध से किसोनों का बहुत हित होने वाला था। देश के लिए उसका यह कार्य वरदान साबित हो सकता था। अतः वह एकाग्र होकर अपने कार्य में लीन था।

शंकर की लगन और कार्यदक्षता ने प्रोफेसर को मुग्ध कर दिया। वे शंकर के स्वभाव से परिचित थे। जब वह किसी विषय से संबंधित जानकारी हासिल करना चाहता था तो वह तन-मन से उसके पीछे पड़ जाता था। उसे न खाना भाता था न सोना। वह परिणाम तक पहुंचने के लिए व्याकुल रहता था। प्रोफेसर के पास जितने विद्यार्थी थे वे ज्ञान-विज्ञान से बढ़कर डाक्टरेट की उपाधि पर ही अधिक ध्यान देते थे। इस बात से प्रोफेसर साहब अच्छी तरह परिचित थे।

शंकर की बात कुछ भिन्न थी। उसे डाक्टरेट के स्थान पर एक नए विषय को जानने की उत्सुकता होती थी। उसकी इस कार्यपटुता को देख कभी-कभी प्रोफेसर साहब भी भीतर ही भीतर डर जाते थे। उसके प्रति आदर भाव भी रखते थे। ऐसे शोधार्थी को पाना वे अपना भाग्य समझते थे। उनका विश्वास था कि ऐसे विद्यार्थी से उनका नाम और बढ़ जाएगा।

प्रोफेसर के पास देश-विदेश के कई मासिक पत्र आते थे। वे तो उन्हे पढ़ते न थे। पर शंकर उनका सदुपयोग करता था। उनके द्वारा वह विज्ञान के क्षेत्र की नयी उपलब्धियों से परिचित हो जाता था। उसके हर कार्य मे नयी बात होती थी। वह नये-नये खोजो के प्रति उत्साह दिखाता था।

ठीक छए बजे सब उठ खड़े हुए। पर शंकर अपने ध्यान से हटना नहीं चाहता था। उसके मन की बात प्रोफेसर ने एक ही नजर में ताड़ ली। शंकर की जिज्ञासा के लिए चौबीस घंटे अपर्याप्त थे। प्रोफेसर ने भीतर ही मुस्कुराते हुए धीमे से कहा—"पूर फेलो।"

दिन अपने रफ्तार से बीते जा रहे थे। पाईथोलोजी लॉब के सारे कार्य रोज़ की तरह सम्पन्न हो रहे थे। वहा के विद्यार्थी प्रोफेसर के निर्देशन से बढ़कर वैज्ञानिक पुस्तकों पर अधिक निर्भर रहते थे। उन्हीं की सहायता से वे डाक्टरेट की डिग्री पाने में सफल होते थे। शंकर अपने कार्य में व्यस्त था। छः महीने के भीतर वह डाक्टरेट की डिग्री के योग्य बनने वाला था। अचानक एक दिन एक विचित्र घटना घटी।

शंकर माइक्रोस्कोप के सामने बैठकर उसी फंगस पर स्टडी कर रहा था जो कृषि के लिए विनाशकारी है। उसे फंगस में एक विचित्र आकार दिखायी दिया। इसके पहले वह उसे दिखाई नहीं दिया था। उसके आश्चर्य की सीमा न रही। वह जल्दी-जल्दी प्रोफेसर के पास गया और उसने कहा—"सर! सर! जस्ट वन मिनट। एक बार आप इधर आइये।" शंकर यह भी भूल गया कि प्रोफेसर पर उसके इस आचरण का क्या प्रभाव पड़ेगा?

प्रोफेसर के वहां आने से पूर्व ही अन्य दो शोधार्थियों ने माइक्रोस्कोप के द्वारा यह

जानने की चेष्टा की कि शंकर की इस उत्सुकता का कारण क्या है? पर उनकी समझ में कुछ नहीं आया। वे वहां से हट गये।

प्रोफेसर रंगाराव ने माईक्रोस्कोप में देखा। शंकर सविस्तार उस आकार के बारे में बता रहा था। प्रोफेसर चुपचाप शंकर की बातों को सुन रहे थे। "सर! मेरा अनुमान है कि गेहूं की फसल को नुकसान पहुंचाने वाले फंगस के साथ इस आकार का संबंध अवश्य है। मैं इस पर अपना कार्य जारी रखना चाहता हूं।" मंद मुस्कान के साथ प्रोफेसर ने उसकी पीठ पर हाथ रखते हुए कहा—"अवश्य शंकर! अवश्य स्टडी करो। मैं तुम्हें एक महीने के भीतर ही उपाधि दिला दूंगा। विशयू बेस्टाफ लक।"

"नहीं सर! मुझे डाक्टरेट की चिंता नहीं है। मैं यह भी नहीं चाहता कि उसे एक महीने के भीतर ही पा लूं। मेरा मन नहीं करता कि अभी से नौकरी के बंधन में बंध जाऊं। अभी छ: महीने का समय तो है ही। तब तक मैं इस लेबोरेटरी को छोड़ नहीं सकता।"

धीरे-धीरे शंकर ने अपने मन की बात प्रोफेसर के आगे रख दी। प्रोफेसर ने कनखियों से शंकर की ओर देखा। उन्हें शंकर की बातों में अटूट विश्वास दिखाई दिया। उन्होंने ठहाका लगाकर—"ठीक है। वैसा ही करना। पहले इस नयी खोज पर मन लगाओ। इसके संबंध में सविस्तार लिखकर बीस दिन के अंदर मुझे सौंप देना। दोगे न?" यह कहकर वे वहां से चले गये।

प्रोफेसर की आज्ञा लेकर शंकर दिन-रात काम में लग गया। सोलह दिन के अंदर ही उसने उस फंगस के संबंध में बताते हुए, उसे समूल नष्ट करने की विधि भी लिख दी। समय के भीतर उसने प्रोफेसर के मेज पर सारे पेपर रख दिए।

उन पेपरों को पाकर प्रोफेसर साहब फूले नहीं समाए। उन्होंने हंसते हुए अन्य दो स्कालरों को लक्ष्य कर कहा—"आज तुम्हें एक बात बता देना चाहता हूं। यह एक प्रकार की खुशी की बात है। शंकर अब से डा. शंकर के नाम से जाना जाएगा। हम सब को छोड़कर वह अब दिल्ली विश्वविद्यालय में रीडर के पद पर जाने वाला है। तुम भी ध्यान देकर अपने कार्य में लग जाओ। तुम्हारा भविष्य भी सुखमय होगा।"

शंकर ने जब ये बाते सुनी तो उसे खुशी से बढ़कर आश्चर्य ही अधिक हुआ। उसने कहा—"यह क्या सर? आपने मेरे लिए नौकरी की व्यवस्था भी कर दी! मुझे तो अभी बहुत कुछ करना है। इतनी जल्दी डाक्टरेट की डिग्री देकर बिदा करेंगे? शंकर की इन बातों में कोई उत्साह न था।

उसके भोलेपन को देखकर प्रोफेसर के साथ-साथ अन्य विद्यार्थियों को भी हंसी आयी। उन्होंने बड़े आश्चर्य के साथ शंकर को देखा।

प्रोफेसर ने जोर से हसते हुए कहा—"यू सिल्ली बॉय! तुम्हें तो खुश होना चाहिए। छ: महीने भी बच गये, डाक्टरेट की डिग्री मिली और नामी विश्वविद्यालय में एक अच्छी

सी नौकरी भी मिली। इससे बढ़कर तुम्हें और क्या चाहिए। ऐसे घबरा रहे हो जैसे तुम्हे दिल्ली न जाकर जंग लड़ने जाना पड़ रहा हो। टू सिल्ली टू फूलिश । हा एक बात ध्यान रखना। कल रविवार है न, तुम मेरे घर पर चाय पर आ जाना। भूलना नहीं'' यह कहते हुए प्रोफेसर आगे निकल गए।

शंकर के मित्रों ने इस समाचार को सुनकर शंकर को उसकी सफलता पर बधाई दी। पर शंकर अपनी हथेलियो में मुह छिपाए बैठा रह गया। ''अरे बेवकूफ! इतनी खुशी की बात सुनकर भी तू उदास है? तेरी अक्ल हो क्या हुआ? क्यों रोनी सूरत बनाकर मातम मना रहा है? जैसे कोई दुल्हन ससुराल जाते समय उदास हो जाती है, उसी प्रकार तू भी खोये-खोये रहने लगा है। हम तो इस पिंजरे से छूटने के लिए छटपटा रहे हैं। अच्छी नौकरी के ख्वाब देख रहे हैं। ऊंचे पद की आस मे बैठे हैं। किस्मत तेरे द्वार पर खडी है और तू है कि उसकी ओर एक बार भी निहारता नही। हमने तेरे जैसे मूर्ख को कभी देखा नहीं। कल ही तू निकल जा और नौकरी ज्वाइन कर ले। हमारे प्रोफेसर हैं न। उनका दिमाग तो खाली है, पर उनका हृदय तो खरे सोने से भरा है। देख तेरे लिए उन्होंने नौकरी का प्रबध भी कर दिया। अपने छात्रों के प्रति इतना प्रेम कितनो को होगा? जा पक्षी-सा उड़कर चला जा। दिल्ली की ओर बढ़ जा।'' शंकर के मित्रो ने कहा। शकर ने उनकी बातों को सुना तो उसे लगा कि उनके मित्रों की बात में कुछ सच्चाई है। उसकी उदासी धीरे-धीरे समाप्त होने लगी।

''कब तक अपने इस यौवन को इस लेबोरेटरी के हवाले करूं? यह तो ठीक नही है।'' शकर ने सोचा। उसके लिए एक योग्य युवती भी तैयार थी। नौकरी मे प्रवेश कर, विवाह के बंधन मे बंधकर, सुख से जीने की आशा उसके मन मे बलवती होने लगी।

उसने प्रोफेसर की आज्ञा का पालन करना ही उचित समझा।

सात महीने बीत गए। शंकर अब दिल्ली विश्वविद्यालय मे रीडर था। उसका छोटा-सा घर-परिवार था। प्रांगण में एक छोटा सुन्दर बगीचा था। पत्नी सुंदर थी। उसका जीवन सुख से बीत रहा था। शीतकाल का समय था। बाहर निकलना कठिन था। शंकर बेड पर ओढ़कर लेटा हुआ था। पत्नी ने उसे कॉफी के साथ-साथ उस दिन का समाचार भी दिया। उसकी पत्नी सुनंदा ने कहा—''आपने प्रोफेसर रंगाराव के निर्देशन में काम किया था न?''

''हां! पर क्यों? उन्हें क्या हुआ? क्या मर तो नहीं गये?'' गरम-गरम काफी का मजा लेते हुए शंकर ने कहा।

''तुम तो बड़े निर्दयी हो जी। अपने गुरु के प्रति ऐसी बातें कोई करता है? देखो भारत सरकार ने उन्हें 'पद्मश्री' से सम्मानित किया है।'' सुनंदा ने कहा।

शंकर को धक्का सा लगा। उसने काफी के कप को एक ओर रख दिया। एक के बाद एक प्रश्न शंकर के मुंह से तीर की भांति निकल पड़े।

"इतना चकित होते क्यों हो? 26 जनवरी के दिन भारत सरकार की ओर से उन्हें 'पद्मश्री' से सम्मानित किया जाएगा। वे आपके प्रोफेसर हैं। उनके प्रति इतना अविश्वास क्यों? वे भी तुम्हारे समान बड़े मेधावी हैं। तुम तो अपने मित्रों के सामने उनकी तारीफ करते अघाते न थे। पर आज उनके बारे में इस तरह अनादर दिखाते देख मुझे आश्चर्य हो रहा है।" सुनंदा ने विस्मित होकर कहा।

"औरों से जब मैं बात करता हूं तब मैं अपने आपको प्रोफेसर रंगाराव का शिष्य मानता हूं। उनकी तारीफ करना मेरे लिए जरूरी है। अब मैं तेरे पति के रूप में बात कर रहा हूं। इस कारण सच बोल रहा हूं। एक बार समाचारपत्र देना। देखना चाहता हूं कि किस आधार पर उन्हें 'पद्मश्री' से सम्मानित किया गया है। उसने समाचार पत्र पर नजरें दौड़ायीं। उसकी नजरे प्रोफेसर रंगाराव के पासपोर्ट साइज के फोटो पर जाकर टिक गयीं। वही बड़ी-बड़ी मूंछें और वही बड़ी-बड़ी आंखें। संदेह की कोई गुंजाइश नहीं। वे प्रोफेसर रंगाराव ही थे। फोटो के नीचे भी साफ छपा था—"प्रोफेसर रंगाराव। गेहूं की फसल को नुकसान पहुंचाने वाले एक किस्म के फंगस के संबंध में, उसके समूल नष्ट करने के उपायों के बारे में खोज करके प्रोफेसर ने कृषि के क्षेत्र में सराहनीय कार्य किया है। उनकी इन सेवाओं के उपलक्ष्य में भारत सरकार ने पाईथोलोजी के प्रोफेसर रंगाराव को 'पद्मश्री' से सम्मानित किया।"

इन वाक्यों को पढ़ते ही उसकी आंखों के आगे अंधेरा छा गया। उसके हाथों से टकराकर काफी का कप टुकड़ों में बंट गया।

"अजी क्या बात है? अचानक तुम्हे क्या हो गया है? किस सोच में पड़ गये हो? सुनंदा ने घबराकर पूछा।

"कुछ नहीं, मैं अपने प्रोफेसर के बारे में सोच रहा हूं, और कुछ नहीं।" मंद मुस्कान के साथ शकर ने सुनंदा की ओर देखकर कहा।

उसे लगा आज फिर एक गुरू द्रोण ने एकलव्य का अंगूठा काट लिया है। □

अनुवाद : डा. एम. रंगय्या

अब न नसैहौं

ऋता शुक्ल

ऋता शुक्ल की कहानियां अक्सर अपनी बात संवेदनशील आग्रह के साथ कहती हैं। इनकी कहानियों में बदलते हुए जीवन मूल्यों के कारण बढ़ती अनैतिकता एवं स्वार्थ के विरूद्ध चिंता है। 'अब न नसैहौं' के निखिलानंद आर्युविज्ञान में पारंगत हैं, निर्लोभी एव पूर्ण स्वाभिमानी हैं। आदर्शवादी मूल्यों पर चलने वाले हैं परंतु किस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं। श्रीशचंद का चरित्र अलग आकर्षित करता है।

उस दिन सहसा न जाने क्या हुआ था? कहीं नहीं जाने का निश्चय करते अपनी कोठरी मे सिमट कर रह गए थे वे! मटमैली शर्ट की फटी हुई कॉलर-सी जिंदगी के रेशे उधेड़ने की कैसी विकलता थी वह ...?

गंगूराम महाविद्यालय में पूरे पच्चीस वर्षों तक सूर, कबीर पढ़ाते रहे।

तब ...?

मन के भीतर अकारण उपज आई शून्यता क्या यूं ही है?

काशी हिंदू विश्वविद्यालय के परास्नातक डॉ श्रीशचंद्र ...।

तिवारी पुर से काशी के लिए चले, तो कालीथान के पुरोहित सूर्यानंद पांडेय की पुरानी ऐनक भाप से धुंधली हो गई थी। वही चिरपरिचित सुदामाभाव—

ऊँ श्री गणेशाय नमः। ऊँ इष्टदेवताभ्यो नमः। ऊँ कुलदेवताभ्यो नमः।

ऊँ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ..।

जाओ बचवा, तुम्हारा पथ सुफल हो .. !

अम्मा ने पोटली में सत्तू-गुड़ की सौगात सहेजते हुए निर्धनता की कचोट को जाहिर नहीं होने देने का निष्फल प्रयास किया था।

सबके आपन-आपन भाग बबुआ! देलसागर के तिरलोकी सिंघ के घरे जनमल रहित ऽ त सुरेन्दर अइसन सूट-बूट पहिरतऽ!

सुरेंद्र, उनके बचपन का सहपाठी ... हर महीने नई कमीज पहनकर आता, तो पूरी

पाठशाला उसकी ओर मुखातिब हो जाती।

अरे, देखो तो सुरेनवा को ..., कैसी धाकड़ कमीज झाड़ कर आया है!

ऐसी खड़ी कॉलर की कमीज ... ?

हमने कभी नहीं देखी .. !

सुरेंद्र की अकड़ देखने लायक होती—

ठेठ बंगाली कट कमीज है! रह गए न गांव तिवारीपुर के बकलोल बामन! हमारे कलकतिया मामा ने हमारे लिए यह खासमखास डिजाइन ...

एक बार नाहक बखेड़ा उठ खड़ा हुआ था। किसी उत्पाती बच्चे ने सुरेंद्र की कमीज पर टिकिया वाली स्याही उड़ेल दी थी। पूरी कक्षा हो-हो करती खिल उठी थी।

एइ, सुरेन्दरवा की कमीज देखो .

एकदम चकाचक डिजाइन .

खास नखलउवा नक्शा .. ।

सुरेंद्र ने उनका नाम लेकर गुरू जी से शिकायत की थी—श्रीश मेरे पीछे बैठा था, जरूर इसी की कारस्तानी है, कंगला कहीं का .. ! जिंदगी में कभी नई कमीज देखी भी है?

गोकुल गुरू जी ने छूटते ही अपनी बेत हवा मे घुमा दी थी—

क्यो सिरीस जी, आप ही की जलन ज्वालामुखी बनी है! जरा हाथ तो बढ़ाइए आगे ...

यह प्रसग अपने से ऊंची कद काठी वाले विवेक को सुनाया था, तो बुरी तरह खीझ उठा था वह—

टूटी-फूटी खपरैल वाले वर्षो पुराने उस पुश्तैनी मकान की शक्ल में एक उजड़ा हुआ अतीत उनके सामने था। अम्मा के गोबर-माटी सने हाथो की छुअन से लिपटी वह पुरागाथा—

तेरे परबाबा को रत्नदेव तिवारी ने इस गांव मे आकर बसने का न्यौता दिया था।

निखिलानद जी, हम कही के राजा-महाराजा बेशक नहीं है, फिर भी गांव-जवार की ओर से आपको आश्वासन देते हैं—आपका, आपके पूरे परिवार का प्रतिपाल सबलोग मिल-जुल कर करेंगे। काली माई की नित्य सेवा के लिए आप सा शुद्ध सात्विक ब्रह्मज्ञानी कहां मिलेगा हमें ? बहिन का वश वैसे भी पूजनीय होता है। नित्य संस्कारों, विविध अनुष्ठानों में पूरे गांव की, सकल जवार की पुरोहिताई आप ही करेंगे ...!

रत्नदेव तिवारी ने वेदज्ञ निखिलानंद जी की सादर अगवानी की थी—

गुरुदेवो भव

आज से हमारे कुल परिवार के पुरोहित जी महाराज हुए आप ... !

धान सिंझाती, बाजरा पीसती, कोदो की खीर पकाती अम्मा जब-तब श्वसुर-गृह के बीत चुके वैभव की छांह तले सुस्ताने बैठ जातीं—

निखिलानंद पांडेय की पालकी जिस ओसारे पर टिकती, जजमान कृत-कृत्य हो उठता—

नवद्वीप की सकल विद्याओं के ज्ञाता महाराज जी पधारे हैं!

घर की स्त्रियां गले में आंचल डालकर दूर से भूमिष्ठ प्रणाम करतीं। छोटे बालक सामने लाए जाते।

ॐ श्वेतवर्णा समुद्भिष्टा कौशेय वसना ...

स्वस्ति वाचन करते निखिलानंद जी सदाशयतापूर्वक सबकी कुशल पूछते।

निरभिमानी, निरलस श्रीशचंद्र के परबाबा ...

तुम्हें राहु की शांति के लिए जप करना होगा जजमान ...

और बहुरिया, इस रूग्ण बालक के शीघ्र स्वास्थ्य लाभ के लिए भगवान शंकर की आराधना विशेष फलवती होगी ढाई लक्ष महामृत्युंजय का जप . . । महामाया की कृपा से सब ठीक हो जाएगा!

आयुर्विज्ञान में पारंगत, निर्लोभ किंतु पूर्ण स्वाभिमानी निखिलानंद जी—

विद्या नाम की सर्वोच्च संपदा का समादर करने वाला ही सच्चा ब्राह्मण है।

रत्नदेव बाबा का बनिहार शिवधनी महाशिवरात्रि के दिन घर के बाहर सकुचाया-सा खड़ा था—

कहो भाई, कैसे . .?

मेरी घरनी ने यह थोड़ा-सा दही .

लेकिन यह किसलिए भाई? स्पष्ट कहो, क्या किसी विशेष प्रयोजन वश ..

शिवधनी ने एक मुड़ी-तुड़ी पत्रिका खोल कर सामने रख दी थी—

महाराज जी, पूत कपूत हो चला है। दिनभर हाड-तोड़ मेहनत करते हैं, तब भी अनाज की मोहताजी बनी रहती है। न जाने किस नशे की लत लग गई है उसे? खेत-बघार सब परती हुआ जा रहा है। तनिक उसका भाग बांचते ..

निखिलानंद जी ने उस पत्रिका को अपने हाथ में ले लियाथा—

प्रबल मारक योग ... ?

तुलसी जस भवितव्यता ...

वे मौन रह गए थे—

भाई, अपने घर जाओ। समय चूक गया है, काली माई का ध्यान करो!

शिवधनी के लड़के का अपघात हुआ था। दारू की भट्ठी पर मामूली-सी लड़ाई में भाले-गंडासे निकल आए थे। उसकी क्षत-विक्षत देह गांव लौटी थी।

निखिलानंद जी आत्मप्रताड़ना के आंवे में धधक उठे थे—

किसी भूले-भटके प्राणी को सत्पथ पर नहीं ला सका। मिथ्या है मेरा ब्रह्मज्ञान, अकारथ है मेरी व्रत-उपासना!

उन्होंने निश्चय किया था—गांव की प्रत्येक जाति के बालक को अक्षर ज्ञान देंगे ... ।

रत्नदेव तिवारी के बेटों ने खुलकर विरोध किया था—

बुढ़ऊ पुरोहित जी सठिया गए हैं। जात-कुजात कुछ भी नहीं सोचते। काली-मंदिर की पूजा अब इनसे नहीं संभलने की। इनके बेटे नित्यानंद को कहा जाए ... ।

रत्नदेव तिवारी होते, तब भी शायद रोक नहीं पाते—

निखिलानंद जी महाराज, आपका स्वाभिमान आहत हो, ऐसा कोई काम नहीं करेंगे हम ... नित्यानंद मंदिर की देखरेख करें, पर आपको त्रिवेणी-तट पर जाने की क्या आवश्यकता है? वाणप्रस्थ क्या यहां नहीं निभ सकता?

निखिलानंद जी ने अपने बेटे को देवी-पूजन का भार सौंपा था—

इस गांव की सतत कल्याण-कामना की है मैंने! दंभ, ईर्ष्या, स्वार्थ, कपट से कोसों दूर निष्काम कर्म की ऊर्जा से ओत-प्रोत थे मेरे बाल-सखा रत्नदेव तिवारी!

उस निरभिमानी के नहीं रहने से मेरा जीवन रिक्त हो गया है। गांव में अब नया चलन पनपने लगा है। अपने स्वाभिमान की रक्षा यहां रहते हुए कर पाऊंगा, मुझे नहीं लगता। एक विषम परीक्षा का युग सन्निकट है नित्यानंद! मनुष्यता पर कुठाराघात करने वाले कितने ही प्रेत-रव सुनाई पड़ने लगे हैं। मैं अक्षय कल्पवास चाहता हूं बेटा ... ताकि प्रत्येक संतप्त प्राणी की कल्याण-कामना कर सकूं।

नित्यानंद पांडेय ने तिवारीपुर की कुल-पुरोहिताई संभाली थी—

मंदिर के चढावे से घर का खर्च जैसे-तैसे चल रहा था। भांग के नशे ने अकर्मण्यता और जड़ता का दोहरा प्रभाव दिया था। उपनयन हो, विवाह-संस्कार हो, सत्यनारायण भगवान की कथा हो—यजमान बुलाने आते और नित्यानंद जी लोचन हरकारे की दुलकी घोड़ी की तरह एक बारगी अड़ जाते—पहले दक्षिणा का हिसाब करो, बयाना दे जाओ, तभी ...

गांव के एक बुजुर्ग ने समझाया था—भगवान की दी हुई विद्या का मोल-तोल कैसा बचवा? दक्षिणा तो श्रद्धा भाव की होती है। सारे शुभ कर्म विधिपूर्वक संपन्न हो जाएं तो लोग अपनी राजी-खुशी से ..

नित्यानंद जी अगियावैताल हो उठे थे—

मंडी में अनाज बेचने जाते हैं तो ठोक-बजा कर सिक्के सहेजते हैं कि नहीं? थान का थान कपडों का व्यापार होता है—एक गिरह कपड़ा कोई बनिया मुफ्त में दे दे तो ... ! पुरोहिताई क्या सबसे गई-बीती है?

हमें क्या पता नहीं है—सकलदेव महतो के घर में सोने-चांदी की हांडी दबी पड़ी है और घंटे भर की कथा कहलवाते, भगवान को धन्यवाद देते चार पूरियां और सवा रूपए की दक्षिणा पकड़ा कर छुट्टी पा जाते हैं! हमें भिखारी समझ रखा है क्या?

कुलराखन ठाकुर के मैट्रिक फेल भतीजे ने पीछे-से फबती कसी थी—

गए माघ दिन उन्नीस बाकी! अकड़ लीजिए बामन देवा! वह दिन दूर नहीं, जब

गिरामोफोन पर तवा बजाकर सतनारायन भगवान की कथा बांची जाएगी। पच्छिमी सिवान पर तवा घूमेगा, पूरबी सिवान तक झनकार होगी घंटा, घड़ियाल, ढोल ढमाका सबकुछ आपरूपी ... ।

वाणप्रस्थी निखिलानंद जी ने सबकुछ सुन कर कहा था—

मिथ्याभिमान ने रावण को नहीं बख्शा! नित्या, गांव के बड़े-बुजुर्गों से सब सुन लिया है मैंने! जप-तप, ध्यान तुझसे किस तरह बिसर गया है रे, बोल तो ... दूसरे क्या कहते हैं इसकी चिंता तुझे है और जो कुछ तू कर रहा है वह .. ?

आत्मसंयम का जो पाठ मैंने पढ़ाया था। उसके स्थान पर तेरा यह प्रमादी रूप ? एक व्यसनी परमज्ञान की बात करे?

नित्यानंद की भुनभुनाहट उनके कानों में पड़ी थी—मंदिर की दशा देखी है? दीवारों पर रंग-रोगन नहीं, प्रणामी चढ़ाने आते हैं तो अठन्नी या रुपया बस, घर की गुजर चले तो कैसे ...?

हमारे बाल-बच्चों का क्या कोई हक नहीं बनता ...?

निखिलानद जी की आत्मा असह्य यत्रणा का साक्षात्कार कर रही थी—जीवन धारण करने का अधिकार सबको है नित्या, लेकिन तुझे आध्यात्मिक ज्ञान की पूंजी सौंपना चाहता था मैं! अलौकिक के संधान की तेजस्विता से परिपूर्ण होता तू! ऐहिकता का लोभ ही उसके दूरत्व का सबसे बड़ा कारण होता है।

भौतिक बाधाओं से ग्रस्त नित्यानंद अपने बौद्धिक क्षरण का प्रमाणक बनकर रह गए थे। गांव की नई पीढ़ी ने उनके झक्की स्वभाव को अपने हास-परिहास का विषय बना लिया था।

उनके बेटे सूर्यानंद जी सरलचित्त के धर्मभीरू पुरुष थे। घर की खाली पिटारियों को देखते, तो एक ठंढा निश्वास मुंह से निकल जाता काली माई की जैसी मरजी .

किसी तरह प्रवेशिका पास करने वाले सूर्यानंद की टूटी-फूटी मंत्र विद्या में कोई शक्ति शेष हो या नहीं, पर वे देवीपूजन बड़े मनोयोग से करते। दिन भर का खाली वक्त अपने घर के पिछवाड़े खेत के छोटे-से टुकड़े को सहेजने में लगा देते—पटवन का पक्का इंतजाम हो जाए तो मकई की फसल सालभर के लिए भरपूर हो जाएगी।

श्रीशचंद्र ने अपने पिता के चेहरे पर एक निरीह मुसकान देखी थी—जो दे, उसका भला, जो न दे उसका भी भला!

तरकारी, दाल में नमक पड़ा हो, तब भी ठीक, न पड़ा हो, तब भी .

अम्मा कभी-कभार खीझ उठती थीं—

बिना सींग की सुधवा गाय से भी गए बीते .. ऐसा मरद-मानुस होता है भला ...?

अच्छी तरह याद है उन्हें—सुरेन्दर के पिता त्रिलोकी सिंघ ने पूरे जवार में गुड की भेली बंटवाई थी—

हमारा सुरेन्दर मैट्रिक पास कर गया है।

सूर्यानंद जी घर लौटे थे तो अम्मा ने अतिरिक्त उछाह में भरकर सूचना दी थी—बबुआ पास हो गइले, पहिला किलास ... ।

वे चुपचाप पूजा की आसनी बिछा कर बैठ गए थे—ॐ नमो नेव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः।

श्री ग्चंद्र ने काशी में पढ़ने की इच्छा व्यक्त की थी—एक मौन असहमति का दर्द पसीने की बूंदें बनकर उनकी पेशानी पर उभर आया था—

लेकिन वहां की पढ़ाई-लिखाई का खरच . .?

श्रीशचंद्र के लिए उनका अंकपत्र ही सबसे बड़ी नियामत था—

साहित्य में अस्सी प्रतिशत से अधिक विज्ञान सहित सभी विषयों में सर्वोच्च अंक ... । उन्हें पूर्ण विश्वास था—निःशुल्क पठन-पाठन की व्यवस्था हो जाए, तो भोजन भर वे स्वयं उपार्जित कर लेंगे . . ।

अम्मा को बड़ी चिंता थी—परदेस में भूख-पियास लगी, त का करबऽ?

श्रीशचंद्र ने अम्मा को सांत्वना देने के बहाने अपने-आपको आश्वस्त करना चाहा था—

अपनी भूख-प्यास भर अर्जित करने की सामर्थ्य मुझमे है अम्मा, तुम मेरी चिंता मत करो ..।

★ ★ ★

उन्हें घर मे बैठा देखकर विवेक अचरज से भर उठा था—

मां, पापा की तबीयत तो ठीक है न . ।

सुजाता कई बार पूछ चुकी थी—क्या बात है ... ? सिर मे दर्द है क्या? ज्यादा तकलीफ हो, तो डॉक्टर को बुलवा दूं ..?

आखिर, क्या सोच रहे हैं आप ..?

सचमुच, किसी उधेड़बुन में पड़े हुए थे वे ... ?

उनके कनीय सहयोगी मनोजलाल ने कितने उत्साह के साथ प्रस्ताव रखा था—

अर्द्धकुंभ पर कई लोग जा रहे हैं। पूरी डीलक्स बस आरक्षित कराई गई है। सर, आप भी चलते तो ...

वे जानते थे—सुजाता के भीतर एक गहरी ललक थी—

आपके पुरखे त्रिवेणी तट का सेवन करते थे—मानस-गायन, श्रीमद्भागवत का पारायण ... । उनकी शिष्य परंपरा अब भी वहां मौजूद है। हमारी इच्छा थी कि एक बार ...

उस समय उन्होंने कितनी तत्परता से इन्कार किया था—

न किसी फल-फूल का सपना देखने—

आते हैं समय को थोड़ा कुतरने
हवा को थोड़ा थामने
आकाश को कुछ चिढ़ाने
पक्षी बार-बार आते हैं
उसी सूखी शाखा पर—

वहीं आता है एक बिसरा हुआ छन्द,
वहीं खिलता है एक कत्थई शब्द,
वहीं लरजता है लय का एक अदृश्य किसलय।

वहीं होता है धूप का आखेट,
वहीं होती है रात की जासूसी,
वहीं जागती है लौ कविता की।

वहीं कोमल खोलता है नयन,
वहीं झरती है सुकुमार ओस,
वहीं तैरता है एक मासूम गान।

वहीं उसी सूखी शाखा पर
जहां पक्षी बार-बार आते हैं। □

ओ गंगा की धार

डॉ. ओदोलेन स्मेकल

भारतीयों के लिए चेक गणराज्य के एक परिचित एवं चर्चित साहित्यकार। अनेक कविताओं का दोनों भाषाओं मे सार्थक अनुवाद। भारत में चेक गणराज्य के राजदूत डॉ ओदोलेन स्मेकल ने ये कविता मूलतः हिंदी में लिखी है। उनके अनेक संग्रह हिंदी में प्रकाशित हैं।

जिस क्षण
जीवन की छबियां
छूने मे समर्थ न हो पाऊं
अस्ताचल गामी
सूरज को न देख पाऊं
सांग का यह हिडोला
चाह कर भी न हिला पाऊं
उसी क्षण मेरी देह
मां गंगा की तट पर
अर्पित कर देना
गंगा की धार
यह अनवरत पुनीत धार
पसीने से भींगे कंधों से
धाती दैहिक ताप
जहां लपट उठती आग की लपट
बो देती भष्म में प्राण
यहां मां गंगा के तट पर
मानव का दिन
कभी नहीं ढलता

ढलता केवल भोर
हो एकाकार
सब के संचित चिर-स्वप्न
ओ मां
ओ मां
ओ पावन मां
ओ गंगा की धार।

चाबियों की रखवाली

निकोलाई रेरिख

बहुमुखी प्रतिभा के धनी। चित्रकार, अनुभवी पुरातत्ववेता, कवि और सामाजिक कार्यकर्त्ता। रूस में जन्में परंतु सन् 1928 में स्थाई रूप से कुल्लू के गांव नग्गर में रहने का निश्चय। 'उरूस्वाति' संस्थान की स्थापना। पहला संकलन 'टसवेती मोरी' 1921 में प्रकाशित।

आज मैं बनूंगा जादूगर,
अपनी असफलताओं को
बदल डालूंगा सफलताओं में।

मौन धारण कर रखा था जिन लोगों ने
वे बातें करने लगे हैं।
पीछे मुड़ने लगे हैं
जिन्हें आगे जाना था।
डर गये डरावने लोग,
धमकियाँ देने वाले गिड़गिड़ाने लगे।

फाख्ताओं की तरह विचार आये
और रुक गये संसार का शासन करने के लिए।
सबसे अधिक शांत थे जो शब्द
तूफानों को लेते आये अपने साथ
और तुम चलते रहे उसकी छाया की तरह
जिसे अभी अस्तित्व में आना था।

तुम अब एक बच्चे का रूप धारण करोगे
ताकि बाधा न पहुंचाये तुम्हें किसी तरह की लज्जा।
तुम बैठे रहे बाहर की देहरी पर
जिस तक पहुंच सकते थे हर तरह के ठग।

तुम पूछते थे—कौन ठगना चाहता है मुझे?
इसमें हैरानी की क्या बात?
सफल शिकारी ढूंढ लेगा
अपना शिकार
बिना डरे।
पर सफलता प्राप्त कर
यहां से जाते हुए मैं जानता हूं
तुमसे हर एक से मैं मिल नहीं पाया हूं
अधूरी रह गई है अच्छी मुलाकातें।
बहुत से भले लोग जा चुके हैं
या अभी तक यहां पहुंचे नहीं।
मैं उन्हें जानता नहीं था।
मैं नये नये वस्त्र पहनकर
बैठा रहा तुम्हारे बीच
तुम भी धारण करते रहे परिधान तरह तरह के
और चुपचाप रखवाली करते रहे
द्वारों की जंग लगी
चाबियों की।

हमारा समय

उठो मित्र, समाचार मिल चुका है
पूरे हो गये हैं तुम्हारे विश्राम के क्षण
अब मालूम हुआ है मुझे
कहां खो गया था
पवित्र चिह्नों में से एक वह चिह्न।
सोचो तो कितनी खुशी होगी हमें
यदि ढूंढ सकें हम वह चिह्न!

हमें निकल जाना होगा सूरज निकलने से पहले
पूरी करनी होगी तैयारियां एक रात में।

देखो तो कैसा है आज की राज का आकाश!
पहले कभी नहीं दिखा वह इतना सुंदर।
उसका वह रूप मुझे याद नहीं रह सकेगा
अभी कल ही तो आसन्दी
इतनी उदास थी और इतनी निष्प्रभ,
सहमी सहमी टिमटिमा रही थी चित्रा
और शुक्र ने तो दर्शन ही नहीं दिये,
घर अब सब चमकने लगे हैं
चमक उठे हैं सप्तऋषि और स्वाति।
दूर नक्षत्र मालाओं के पीछे
चमकने लगे हैं नये नये तारे
दिखने लगा है
आकाशगंगाओं का स्पष्ट और पारदर्शी धुंधलापन।
क्या तुम्हें दिखाई नहीं दे रहा यह रास्ता
जिस पर से हमें खोज निकालना है कल उसे।
जाग उठे हैं आकाश पर अंकित अक्षर।
उठाओ अपनी संपदा!
अपने साथ हथियार ले जाने की जरूरत नहीं।
जूते कस कर पहनना
कस कर बांधना अपनी कमर!
पत्थरों से भरा होगा हमारा रास्ता।
चमकने लगा है पूरब।
समय आ गया है अब हमारा। □

अनुवाद : वरयाम सिंह

वे दिन

रमानाथ अवस्थी

जीवन की समस्त चेतना को अनुभूतियों की अनुगूंज के साथ गीत अभिव्यक्त करने वाले रमानाथ अवस्थी हिंदी-साहित्य में एक चर्चित नाम है। 'भीड़ में भी रहता हूं, वीरान के सहारे', की सोंधी गंध हर मन को आज भी रोमांचित कर देती है। मंच के मोह में काव्य-सीमा से समझौता न करने वाले रमानाथ अवस्थी ने इस विधा को सहजता और सधुक्कड़ी चिंतन के साथ जिया है। प्रस्तुत है उनके दो ताजा गीत।

याद आते हैं फिर बहुत वे दिन
जो बड़ी मुश्किलों से बीते थे!

शाम अक्सर ही ठहर जाती थी
देर तक साथ गुनगुनाती थी!
हम बहुत खुश थे, खुशी के बिन भी
चांदनी रात भर जगाती थी!
हमको मालूम है कि हम कैसे
आग को ओस जैसे पीते थे!
घर के होते हुए भी बेघर थे
रात हो दिन हो बस हमीं भर थे!
डूब जाते थे मेघ भी जिसमें
हम उसी प्यास के समंदर थे!
उन दिनों मरने की न थी फुर्सत,
हम तो कुछ इस तरह से जीते थे!
आते-जाते जो लोग मिलते थे
उनके मिलने में फूल खिलते थे!
जिन्दगी गंगा जैसी निर्मल थी,
जिसमें हम नाव जैसे चलते थे!

गंगा की ऊंची-नीची लहरों से
हम कभी आगे कभी पीछे थे!
कोई मौसम हो हम उदास न थे
तंग रहते थे, पर निराश न थे!
हमको अपना बना के छोड़े जो
हम किसी ऐसे दिल के पास न थे!
फूल यादों के जल गये कब के
हमने जो आंसुओं से सींचे थे।

करूं क्या?

सुर सब बेसुर हुये करुं क्या?
उतरे हुये सभी के मुखड़े
सबके पांव लक्ष्य से उखड़े
उखड़ी हुई भ्रष्ट पीढ़ी से
विजय-वरण के लिए कहूं क्या?
सागर निकले ताल सरीखे
अंधों को कब आंसू दीखे
अंधों की महफिल में आंसू
जैसी उजली मौत मरूं क्या?
झूठी सत्ता की मरीचिका
आत्मभ्रष्ट कर रही जीविका
बौनों की बस्ती में बोलो
ऊंचे कद की बात करं क्या?

बेबीलोन के खंडहरों में

जगदीश चतुर्वेदी

साठ के दशक की कविता में 'निषेध का स्वर प्रवाहित करने वाले जगदीश चतुर्वेदी प्रतिष्ठित कहानीकार एवं कवि हैं। पिछले दिनों इराक सरकार ने उन्हें अपने यहां निमंत्रित किया था। हिंदी कविता में अपने तेवर के लिए जाने जाते हैं।

अम्मान (जार्डन) से बगदाद जाते हुए

यह विशाल मरूस्थल
कभी समाप्त भी होगा या नहीं
एक मरणान्तक चुप्पी में तैरता हुआ मरूप्रदेश
मेरी आंखों को काटता हुआ
चांदनी में डूबा हुआ है।

जार्डन का खूबसूरत शहर
बहुत पीछे छूट गया है
अम्मान को देखकर शिमला की
पहाड़ियां याद आ गई थीं।

पर यह मरूस्थल कभी समाप्त नहीं होगा
कभी समाप्त भी होगा या नहीं ...
पूरी रफ्तार से भाग रही है लम्बी हडसन कार
हम चार यात्री
चले जा रहे हैं
अरब की लम्बी यात्रा पर
विशाल मरूस्थल से गुजरते हुए।

प्रतीक्षा में हूं

कि कब होगा सबेरा
और हम हारुन-उल-रशीद के
शहर में होंगे

साथ होगी टाइग्रिस
और उसके किनारे पर
झूलता हुआ बगदाद।

बगदाद से बेबीलोन नाट्यशाला में

बेबीलोन जाते हुए
फरात नदी का चौड़ा पुल पार करते ही
साफ आसमान पर लटक रहा था
गोल मुंह का चन्द्रमा।

दोनों तरफ खजूर का जंगल था
रेगिस्थान में अभी अभी हुई थी बारिश
चौड़ी, साफ सड़कों से उठ रही थी
एक मादक गंध!

पास की खिड़की से चिपका था
एक फिलस्तीनी चेहरा: बेबाक;
हंसमुख और कजरारी आंखों वाला;

दूर दूर तक रेगिस्तान था
काली काली ढूहों से पटा हुआ
लम्बे लम्बे टैंकर
और
सर से गुजर रही
बड़ी बड़ी जापानी कारों की कतारें।

दूर जिधर बस्तियां जल रही थीं
आ रही थी इराकी संगीत की धुन।

पीछे छूट गया था बगदाद
स्वच्छंद, शांत बहती हुई फरात
ग्यारह मंजिला अल-मंसूर होटल

आगे अंधेरा ही अंधेरा था
पर कभी कभी
सड़क के बीचों बीच चमक उठती थी तस्वीर
राष्ट्रपति सद्दाम हुसैन की
कभी फौजी वेशभूषा में, कभी सूट में सजी हुई
कभी इबादत में हाथों को
मस्तक की ओर ले जाते।

रोशनियों के एक पुल पर ठहर गये थे हम
एक ऊंची दीवार चमक उठी थी अन्धेरे में
इतिहास तैर गया था मेरी आंखों में
सामने थे
बेबीलोन के मग्न स्तूप, नाचते बगीचे
और बाबुल की हजारों वर्ष पुरानी
विशाल नाट्यशाला।

यहीं कहीं सिकन्दर ने अंतिम सांस ली थी
यहीं थे सुमेरियन के मंदिर
यहीं बसाया था सम्राट ने कुरीगाल जू ने
एक विशाल शहर हजारों वर्ष पूर्व।

इश्तार दरवाजे से गुजरता हुआ
घाटी में उतर जाता हूं
सामने हैं खंडहर बनी दीवारों पर उकेरे गए
शेर और विचित्र चेहरों वाले जानवरों के चित्र।
यहां के लोगों का विश्वास है
कि बेबीलोन जंगली जानवरों ने बसाया था:
यहां बर्बर पशुओं का राज्य था!

आज भी इन खंडहरों के बीच
खड़ा है बेबीलोन का शेर
एक मानव आकृति को
अपने पंजों में दबाये हुये।

तभी बजने लगे थे वाद्य
नाचने लगी थीं रूसी सुंदरियां
और हम चल पड़े थे उन ऐतिहासिक खंडहरों से
बाबुल नृत्यशाला की ओर
जहां हजारों लोग देख रहे थे रूसी सुंदरियों का
सामूहिक नृत्य!

मैं तो इश्तार द्वार के
उन अकल्पनीय झूलते बगीचों की याद में
निमग्न था
जिन्होंने देखी थी वैभवपूर्ण असीरियन संस्कृति
सिकंदर महान का ध्वंस
और मैसोपोटानिया का गरिमामय
सांस्कृतिक परिवेश!

जिंदगी के अंतिम क्षणों में

उपेंद्रनाथ अश्क

नाटक, कहानी एवं उपन्यास में ऐतिहासिक रचनाओं के धनी। अनेक साहित्यिक सम्मानों से अलंकृत हिंदी नाटक को रोमांस के कटघरे से युगीन समस्याओं से जोड़ने वाले उपेंद्रनाथ अश्क की ताजा कविता। आजकल उपन्यास 'गिरती दीवारें' का अंतिम अंश पूर्ण कर रहे हैं।

दोस्त, जिन्दगी के इन अन्तिम क्षणों में
जरूरतों का तकाजा ही सही—
तुम क्यों ले आये हो मुझे
इस दुर्गम रास्ते पर—इस
कंटीले, ऊंचे—नीचे, ऊबड़-खाबड़
खाइ-खत्तों से भरे दुरूह रास्ते पर
मैं चन्द कदमों ही में थक गया हूं।

यहां हमेशा आगे चलने वाले को
किसी बड़े आदमी के
पीछे चलना पड़ता है।

और वह बड़ा आदमी
अपने आगे चलने वाले किसी
और बड़े आदमी के पीछे चलता है।

वह चाटुकारिता भरी मुस्कानों से
उसके आगे सिर झुकाता है
और स्वयं अपने पीछे आने वालों से
सजदों की अपेक्षा करता है।

दोस्त तुम कहां ले आये हो मुझे

इस दुर्गम कंटीले मार्ग पर
मैं चन्द कदमों ही में थक गया हूं।

यह बड़ा आदमी, जिसके पीछे
तुमने मुझे लगा दिया है
अन्य बड़े आदमियों से ज्यादा भिन्न नहीं है।
बड़े आदमी प्रायः अत्यन्त व्यावहारिक
दुनियादार, जमानासाज़
काइयां, कुटिल, रियाकार
मन-की बात अपने तक ही रखने वाले
झुक कर झुकाने वाले और
गिरगिट की तरह रंग बदलने वाले होते हैं।

यह उनसे थोड़ा बढ़ा-चढ़ा है
पर आत्म-विश्वासी
अहंकारी
स्वेच्छाचारी।

तुमने मुझे किस रास्ते पर लगा दिया है,
मेरे हितचिन्तक
मैं चार कदमों ही में थक गया हूं।

बड़े आदमी के पीछे चलने वाले को
इस ऊबड़-खाबड़ रास्ते के किसी मोड़ पर
इतना झुक जाना पड़ता है
कि उसके जूते होते हैं
और आपका मस्तक।

बड़ा आदमी बड़ी दर्दमन्दी से
अपने पैर आगे बढ़ा देता है
कि आप उन पर आराम से
मस्तक टिका सकें।

दोस्त तुम क्यों मुझे थोड़े धैर्य से चलने को कहते हो

स्वाभिमान को शिथिल करने वाले, इस ऊबड़-खाबड़
रास्ते पर
मैं चार कदमों ही में थक गया हूं।

यहां आगे चलने वाला
कभी साफ़-शफ्फ़ाफ चट्टान पर
बैठ कर सुस्ताता है।
उसके पीछे चलने वाले हाजतमन्द
उसके इर्द-गिर्द बैठ जाते हैं।
वह उनसे सहर्ष बतियाता है।

वह अपना चौड़ा मुंह खोल कर
अपने दांत दिखाता है
जिन पर जाने कैसे
पीले-पीले चकते फैले हैं
जी मिचलाता है।

वह लनतरानियां हांकता है
अपनी विजयों के किस्से सुनाता है।
हाजतमन्द सुनते हैं
बात-बात पर सिर धुनते हैं।
'जी हां-जी हां' कहते हुए मूंड हिलाते हैं
उसे और किस्से सुनाने को उकसाते हैं।

वह खुश हो जाता है
और सहर्ष बताता है
कैसे उसने अमुक और अमुक और अमुक को
उनकी औकात दिखाई
कैसे अपने विरोधियों का गुट तोड़ा
कुछ को चंग पर चढ़ाया
कुछ को जरा मरोड़ा
कुछ की पीठ सहलाई
कुछ को लंगड़ी लगाई

जो राह पर आ गये, उनका
साहस बढ़ाया
और उन्हें उनकी योग्यता के अनुसार
छोटी-बड़ी चोटियों पर बैठाया।

वह ठहाका लगाता है
और उठते हुए एक विजयी दृष्टि
चारो ओर फैलाता है।
ऊंची-नीची चोटियों पर निगाह दौड़ाता है।
जहां उसी जैसे लोग बैठे हैं—
हाजतमन्दों से घिरे
लनतरानियां सुनाते।
परम संतोष से मुस्कराते।

फिर बड़ा आदमी चल पड़ता है
अपनी विजय-यात्रा पर
और उसके अनुयायी, चोटियों पर बैठने के इच्छुक
हो लेते हैं उसके पीछे
होंट सिये
होथों में अदृश्य निदान-पात्र लिये।

मैं तो एक सीधे सच्चे स्पष्ट
यद्यपि थोड़े कठिन
मार्ग पर चलता आया हूं—जिंदगी भर।
जरूरतों का तकाज़ा ही सही—

इस टेढ़े-मेढ़े मार्ग पर
मैं चन्द ही कदमों में थक गया हूं।

दोस्त तुम किस कुढ़व मार्ग पर ले आये मुझे
ज़िन्दगी के इन अन्तिम वर्षों में। □

न किसी फल-फूल का सपना देखने—

आते हैं समय को थोड़ा कुतरने
हवा को थोड़ा थामने
आकाश को कुछ चिढ़ाने
पक्षी बार-बार आते हैं
उसी सूखी शाखा पर—

वहीं आता है एक बिसरा हुआ छन्द,
वहीं खिलता है एक कत्थई शब्द,
वहीं लरजता है लय का एक अदृश्य किसलय।

वहीं होता है धूप का आखेट,
वहीं होती है रात की जासूसी,
वहीं जागती है लौ कविता की।

वहीं कोमल खोलता है नयन,
वहीं झरती है सुकुमार ओस,
वहीं तैरता है एक मासूम गान।

वहीं उसी सूखी शाखा पर
जहां पक्षी बार-बार आते हैं।

ओ गंगा की धार

डॉ. ओदोलेन स्मेकल

भारतीयों के लिए चेक गणराज्य के एक परिचित एवं चर्चित साहित्यकार। अनेक कविताओ का दोनों भाषाओं मे सार्थक अनुवाद। भारत मे चेक गणराज्य के राजदूत डॉ. ओदोलेन स्मेकल ने ये कविता मूलतः हिंदी मे लिखी है। उनके अनेक संग्रह हिंदी में प्रकाशित हैं।

जिस क्षण
जीवन की छबियां
छूने मे समर्थ न हो पाऊं
अस्ताचल गामी
सूरज को न देख पाऊं
सांग का यह हिडोला
चाह कर भी न हिला पाऊं
उसी क्षण मेरी देह
मां गंगा की तट पर
अर्पित कर देना
गंगा की धार
यह अनवरत पुनीत धार
पसीने से भींगे कंधों से
धाती दैहिक ताप
जहां लपट उठती आग की लपट
बो देती भष्म में प्राण
यहां मां गंगा के तट पर
मानव का दिन
कभी नहीं ढलता

ढलता केवल भोर
हो एकाकार
सब के संचित चिर-स्वप्न
ओ मां
ओ मां
ओ पावन मां
ओ गंगा की धार। ☐

चाबियों की रखवाली

निकोलाई रेरिख

बहुमुखी प्रतिभा के धनी। चित्रकार, अनुभवी पुरातत्ववेता, कवि और सामाजिक कार्यकर्त्ता। रूस में जन्में परंतु सन् 1928 में स्थाई रूप से कुल्लू के गांव नग्गर मे रहने का निश्चय। 'उरूस्वाति' संस्थान की स्थापना। पहला संकलन 'टसवेती मोरी' 1921 में प्रकाशित।

आज मैं बनूंगा जादूगर,
अपनी असफलताओं को
बदल डालूंगा सफलताओं में।

मौन धारण कर रखा था जिन लोगों ने
वे बातें करने लगे हैं।
पीछे मुड़ने लगे हैं
जिन्हें आगे जाना था।
डर गये डरावने लोग,
धमकियाँ देने वाले गिड़गिड़ाने लगे।

फाख्ताओं की तरह विचार आये
और रुक गये संसार का शासन करने के लिए।
सबसे अधिक शांत थे जो शब्द
तूफानों को लेते आये अपने साथ
और तुम चलते रहे उसकी छाया की तरह
जिसे अभी अस्तित्व में आना था।

तुम अब एक बच्चे का रूप धारण करोगे
ताकि बाधा न पहुंचाये तुम्हें किसी तरह की लज्जा।
तुम बैठे रहे बाहर की देहरी पर
जिस तक पहुंच सकते थे हर तरह के ठग।

तुम पूछते थे—कौन ठगना चाहता है मुझे?
इसमें हैरानी की क्या बात?
सफल शिकारी ढूंढ लेगा
अपना शिकार
बिना डरे।
पर सफलता प्राप्त कर
यहां से जाते हुए मैं जानता हूं
तुमसे हर एक से मैं मिल नहीं पाया हूं
अधूरी रह गई है अच्छी मुलाकातें।
बहुत से भले लोग जा चुके हैं
या अभी तक यहां पहुंचे नहीं।
मैं उन्हें जानता नहीं था।
मैं नये नये वस्त्र पहनकर
बैठा रहा तुम्हारे बीच
तुम भी धारण करते रहे परिधान तरह तरह के
और चुपचाप रखवाली करते रहे
द्वारों की जंग लगी
चाबियों की।

हमारा समय

उठो मित्र, समाचार मिल चुका है
पूरे हो गये हैं तुम्हारे विश्राम के क्षण
अब मालूम हुआ है मुझे
कहां खो गया था
पवित्र चिह्नों में से एक वह चिह्न।
सोचो तो कितनी खुशी होगी हमें
यदि ढूंढ सकें हम वह चिह्न!

हमें निकल जाना होगा सूरज निकलने से पहले
पूरी करनी होगी तैयारियां एक रात में।

देखो तो कैसा है आज की रात का आकाश!
पहले कभी नहीं दिखा वह इतना सुंदर।
उसका वह रूप मुझे याद नहीं रह सकेगा
अभी कल ही तो आसन्दी
इतनी उदास थी और इतनी निष्प्रभ,
सहमी सहमी टिमटिमा रही थी चित्रा
और शुक्र ने तो दर्शन ही नहीं दिये,
पर अब सब चमकने लगे हैं
चमक उठे हैं सप्तऋषि और स्वाति।
दूर नक्षत्र मालाओं के पीछे
चमकने लगे हैं नये नये तारे
दिखने लगा है
आकाशगंगाओं का स्पष्ट और पारदर्शी धुंधलापन।
क्या तुम्हें दिखाई नहीं दे रहा यह रास्ता
जिस पर से हमें खोज निकालना है कल उसे।
जाग उठे हैं आकाश पर अंकित अक्षर।
उठाओ अपनी संपदा!
अपने साथ हथियार ले जाने की जरूरत नहीं।
जूते कस कर पहनना
कस कर बांधना अपनी कमर!
पत्थरों से भरा होगा हमारा रास्ता।
चमकने लगा है पूरब।
समय आ गया है अब हमारा।

अनुवाद : वरयाम सिंह

वे दिन

रमानाथ अवस्थी

जीवन की समस्त चेतना को अनुभूतियों की अनुगूंज के साथ गीत अभिव्यक्त करने वाले रमानाथ अवस्थी हिंदी-साहित्य में एक चर्चित नाम हैं। 'भीड़ में भी रहता हूं, वीरान के सहारे', की सोंधी गंध हर मन को आज भी रोमांचित कर देती है। मंच के मोह में काव्य-सीमा से समझौता न करने वाले रमानाथ अवस्थी ने इस विधा को सहजता और सघुक्कड़ी चिंतन के साथ जिया है। प्रस्तुत है उनके दो ताजा गीत!

याद आते हैं फिर बहुत वे दिन
जो बड़ी मुश्किलों से बीते थे!

शाम अक्सर ही ठहर जाती थी
देर तक साथ गुनगुनाती थी!
हम बहुत खुश थे, खुशी के बिन भी
चांदनी रात भर जगाती थी!
हमको मालूम है कि हम कैसे
आग को ओस जैसे पीते थे!
घर के होते हुए भी बेघर थे
रात हो दिन हो बस हमीं भर थे!
डूब जाते थे मेघ भी जिसमें
हम उसी प्यास के समंदर थे!
उन दिनों मरने की न थी फुर्सत,
हम तो कुछ इस तरह से जीते थे!
आते-जाते जो लोग मिलते थे
उनके मिलने में फूल खिलते थे!
जिन्दगी गंगा जैसी निर्मल थी,
जिसमें हम नाव जैसे चलते थे!

गंगा की ऊंची-नीची लहरों से
हम कभी आगे कभी पीछे थे!
कोई मौसम हो हम उदास न थे
तंग रहते थे, पर निराश न थे!
हमको अपना बना के छोड़े जो
हम किसी ऐसे दिल के पास न थे!
फूल यादों के जल गये कब के
हमने जो आंसुओं से सींचे थे।

करूं क्या?

सुर सब बेसुर हुये करुं क्या?
उतरे हुये सभी के मुखड़े
सबके पांव लक्ष्य से उखड़े
उखड़ी हुई भ्रष्ट पीढ़ी से
विजय-वरण के लिए कहूं क्या?
सागर निकले ताल सरीखे
अंधों को कब आंसू दीखे
अंधों की महफिल में आंसू
जैसी उजली मौत मरूं क्या?
झूठी सत्ता की मरीचिका
आत्मभ्रष्ट कर रही जीविका
बौनों की बस्ती में बोलो
ऊंचे कद की बात करूं क्या?

बेबीलोन के खंडहरों में

जगदीश चतुर्वेदी

साठ के दशक की कविता में 'निषेध का स्वर प्रवाहित करने वाले जगदीश चतुर्वेदी प्रतिष्ठित कहानीकार एवं कवि हैं। पिछले दिनों इराक सरकार ने उन्हें अपने यहां निमंत्रित किया था। हिंदी कविता में अपने तेवर के लिए जाने जाते हैं।

अम्मान (जार्डन) से बगदाद जाते हुए

यह विशाल मरूस्थल
कभी समाप्त भी होगा या नहीं
एक मरणान्तक चुप्पी में तैरता हुआ मरूप्रदेश
मेरी आंखों को काटता हुआ
चांदनी में डूबा हुआ है।

जार्डन का खूबसूरत शहर
बहुत पीछे छूट गया है
अम्मान को देखकर शिमला की
पहाड़ियां याद आ गई थीं।

पर यह मरूस्थल कभी समाप्त नहीं होगा
कभी समाप्त भी होगा या नहीं ...
पूरी रफ्तार से भाग रही है लम्बी हडसन कार
हम चार यात्री
चले जा रहे हैं
अरब की लम्बी यात्रा पर
विशाल मरूस्थल से गुजरते हुए।

प्रतीक्षा में हूं

कि कब होगा सबेरा
और हम हारुन-उल-रशीद के
शहर में होंगे

साथ होगी टाइग्रिस
और उसके किनारे पर
झूलता हुआ बगदाद।

बगदाद से बेबीलोन नाट्यशाला में

बेबीलोन जाते हुए
फरात नदी का चौड़ा पुल पार करते ही
साफ आसमान पर लटक रहा था
गोल मुंह का चन्द्रमा।

दोनों तरफ खजूर का जंगल था
रेगिस्थान में अभी अभी हुई थी बारिश
चौड़ी, साफ सड़कों से उठ रही थी
एक मादक गंध!

पास की खिड़की से चिपका था
एक फिलस्तीनी चेहरा: बेबाक;
हंसमुख और कजरारी आंखों वाला;

दूर दूर तक रेगिस्तान था
काली काली दूहों से पटा हुआ
लम्बे लम्बे टैंकर
और
सर से गुजर रही
बड़ी बड़ी जापानी कारों की कतारें।

दूर जिधर बस्तियां जल रही थीं
आ रही थी इराकी संगीत की धुन।

पीछे छूट गया था बगदाद
स्वच्छंद, शांत बहती हुई फरात
ग्यारह मंजिला अल-मंसूर होटल

आगे अंधेरा ही अंधेरा था
पर कभी कभी
सड़क के बीचों बीच चमक उठती थी तस्वीर
राष्ट्रपति सद्दाम हुसैन की
कभी फौजी वेशभूषा में, कभी सूट में सजी हुई
कभी इबादत में हाथों को
मस्तक की ओर ले जाते।

रोशनियों के एक पुल पर ठहर गये थे हम
एक ऊंची दीवार चमक उठी थी अन्धेरे में
इतिहास तैर गया था मेरी आंखों में
सामने थे
बेबीलोन के मग्न स्तूप, नाचते बगीचे
और बाबुल की हजारों वर्ष पुरानी
विशाल नाट्यशाला।

यहीं कहीं सिकन्दर ने अंतिम सांस ली थी
यहीं थे सुमेरियन के मंदिर
यहीं बसाया था सम्राट ने कुरीगाल जू ने
एक विशाल शहर हजारों वर्ष पूर्व।

इश्तार दरवाजे से गुजरता हुआ
घाटी में उतर जाता हूं
सामने हैं खंडहर बनी दीवारों पर उकेरे गए
शेर और विचित्र चेहरों वाले जानवरों के चित्र।
यहां के लोगों का विश्वास है
कि बेबीलोन जंगली जानवरों ने बसाया था:
यहां बर्बर पशुओं का राज्य था!

आज भी इन खंडहरों के बीच
खड़ा है बेबीलोन का शेर
एक मानव आकृति को
अपने पंजों में दबाये हुये।

तभी बजने लगे थे वाद्य
नाचने लगी थीं रूसी सुंदरियां
और हम चल पड़े थे उन ऐतिहासिक खंडहरों से
बाबुल नृत्यशाला की ओर
जहां हजारों लोग देख रहे थे रूसी सुंदरियों का
सामूहिक नृत्य!

मैं तो इश्तार द्वार के
उन अकल्पनीय झूलते बगीचों की याद में
निमग्न था
जिन्होंने देखी थी वैभवपूर्ण असीरियन संस्कृति
सिकंदर महान का ध्वंस
और मैसोपोटानिया का गरिमामय
सांस्कृतिक परिवेश!

जिंदगी के अंतिम क्षणों में

उपेंद्रनाथ अश्क

नाटक, कहानी एवं उपन्यास में ऐतिहासिक रचनाओं के धनी। अनेक साहित्यिक सम्मानों से अलंकृत हिंदी नाटक को रोमांस के कटघरे से युगीन समस्याओं से जोड़ने वाले उपेंद्रनाथ अश्क की ताजा कविता। आजकल उपन्यास 'गिरती दीवारें' का अंतिम अंश पूर्ण कर रहे हैं।

दोस्त, जिन्दगी के इन अन्तिम क्षणों में
जरूरतों का तकाजा ही सही—
तुम क्यों ले आये हो मुझे
इस दुर्गम रास्ते पर—इस
कंटीले, ऊंचे—नीचे, ऊबड़-खाबड़
खाइ-खत्तों से भरे दुरूह रास्ते पर
मैं चन्द कदमों ही में थक गया हूं।

यहां हमेशा आगे चलने वाले को
किसी बड़े आदमी के
पीछे चलना पड़ता है।

और वह बड़ा आदमी
अपने आगे चलने वाले किसी
और बड़े आदमी के पीछे चलता है।

वह चाटुकारिता भरी मुस्कानों से
उसके आगे सिर झुकाता है
और स्वयं अपने पीछे आने वालों से
सजदों की अपेक्षा करता है।

दोस्त तुम कहां ले आये हो मुझे

इस दुर्गम कंटीले मार्ग पर
मैं चन्द कदमों ही में थक गया हूं।

यह बड़ा आदमी, जिसके पीछे
तुमने मुझे लगा दिया है
अन्य बड़े आदमियों से ज्यादा भिन्न नहीं है।
बड़े आदमी प्रायः अत्यन्त व्यावहारिक
दुनियादार, जमानासाज़
काइयां, कुटिल, रियाकार
मन-की बात अपने तक ही रखने वाले
झुक कर झुकाने वाले और
गिरगिट की तरह रंग बदलने वाले होते हैं।

यह उनसे थोड़ा बढ़ा-चढ़ा है
पर आत्म-विश्वासी
अहंकारी
स्वेच्छाचारी।

तुमने मुझे किस रास्ते पर लगा दिया है,
मेरे हितचिन्तक
मैं चार कदमों ही में थक गया हूं।

बड़े आदमी के पीछे चलने वाले को
इस ऊबड़-खाबड़ रास्ते के किसी मोड़ पर
इतना झुक जाना पड़ता है
कि उसके जूते होते हैं
और आपका मस्तक।

बड़ा आदमी बड़ी दर्दमन्दी से
अपने पैर आगे बढ़ा देता है
कि आप उन पर आराम से
मस्तक टिका सकें।

दोस्त तुम क्यों मुझे थोड़े धैर्य से चलने को कहते हो

स्वाभिमान को शिथिल करने वाले, इस ऊबड़-खाबड़
रास्ते पर
मैं चार कदमों ही में थक गया हूं।

यहां आगे चलने वाला
कभी साफ़-शफ्फ़ाफ चट्टान पर
बैठ कर सुस्ताता है।
उसके पीछे चलने वाले हाजतमन्द
उसके इर्द-गिर्द बैठ जाते हैं।
वह उनसे सहर्ष बतियाता है।

वह अपना चौड़ा मुंह खोल कर
अपने दांत दिखाता है
जिन पर जाने कैसे
पीले-पीले चकते फैले हैं
जी मिचलाता है।

वह लनतरानियां हांकता है
अपनी विजयों के किस्से सुनाता है।
हाजतमन्द सुनते हैं
बात-बात पर सिर धुनते हैं।
'जी हां-जी हां' कहते हुए मूंड हिलाते हैं
उसे और किस्से सुनाने को उकसाते हैं।

वह खुश हो जाता है
और सहर्ष बताता है
कैसे उसने अमुक और अमुक और अमुक को
उनकी औकात दिखाई
कैसे अपने विरोधियों का गुट तोड़ा
कुछ को चंग पर चढ़ाया
कुछ को जरा मरोड़ा
कुछ की पीठ सहलाई
कुछ को लंगड़ी लगाई

जो राह पर आ गये, उनका
साहस बढ़ाया
और उन्हें उनकी योग्यता के अनुसार
छोटी-बड़ी चोटियों पर बैठाया।

वह ठहाका लगाता है
और उठते हुए एक विजयी दृष्टि
चारो ओर फैलाता है।
ऊंची-नीची चोटियों पर निगाह दौड़ाता है।
जहां उसी जैसे लोग बैठे हैं—
हाजतमन्दों से घिरे
लनतरानियां सुनाते।
परम संतोष से मुस्कराते।

फिर बड़ा आदमी चल पड़ता है
अपनी विजय-यात्रा पर
और उसके अनुयायी, चोटियों पर बैठने के इच्छुक
हो लेते हैं उसके पीछे
होंट सिये
होथों में अदृश्य निदान-पात्र लिये।

मैं तो एक सीधे सच्चे स्पष्ट
यद्यपि थोड़े कठिन
मार्ग पर चलता आया हूं—जिंदगी भर।
जरूरतों का तकाज़ा ही सही—

इस टेढ़े-मेढ़े मार्ग पर
मैं चन्द ही कदमों में थक गया हूं।

दोस्त तुम किस कुढ़व मार्ग पर ले आये मुझे
ज़िन्दगी के इन अन्तिम वर्षों में। □

कुछ देर तो

डॉ. रामदरश मिश्र

प्रख्यात कथाकार, कवि एवं आलोचक। प्रसिद्ध उपन्यास 'जल टूटता है' के रचनाकार। गांव की सुगंध एवं संवेदनशील भावना के ईमानदार कवि।

वे बचपन के दिन थे
वसंत आते ही
गांव का सोया जीवन
अँगड़ाई लेकर जाग उठता था
पेड़ों के नये पत्तों के बीच
कोयल कूक उठती थी
तब मैं बच्चा था
नहीं जानता था कि
जीवन से कोयल का क्या नाता है
वह बोलती थी और मैं उसे चिढ़ाता था
वह और जोर जोर से बोलने लगती थी
तंग आकर मैं उसे पत्थर मारता था
वह उड़कर दूसरे पेड़ की डाल पर बैठ जाती थी
और बोलने लगती थी
वह बस बावरी सी बोलती ही रहती थी—
दिन को
रात को
सुबह को
शाम को
और चाहे-अनचाहे मुझमे उतरती रहती थी

जब मैं गांव से छूटा
तो छूटता ही चला गया

लगातार घंसता गया कांक्रीट के हसीन जंगलों में
जहां न ऋतुएं थीं न मौसम
न जाड़े की धूप थी न गर्मी की छांह
जहां सदाबहार रोशनी थी
सदाबहार यंत्र-संगीत थे
सदाबहार फूल-पत्तियां थीं
और मैं भूल गया था कि कहां से आया हूं।

आज बहुत दिनों बाद आ गया हूं इस ग्राम परिवेश में
कोल बोल रही है
लगातार बोल रही है
कितने समय बाद सुन रहा हूं यह स्वर
यह स्वर नहीं, मेरा बचपन है
मंजरियों से लदी अमराई है
खपरैलों से सिवानों तक डहडहाती चांदनी है चैत की
विरह के दर्द से भीगा लोक-गीत है

गाओ कोयल
गाती रहो
झड़ने दो पर्त दर पर्त रंगीन पलस्तर
होने दो दीवारें नंगी
उड़ जाने दो दीवारों पर टंगे कलेंडर
कुछ देर तो जी लूं
तुम्हारे साथ मनुष्य बनकर

एक पंछी

बहुत दिनों बाद आज उस घर में आया
जिसमें कमरे की खिड़कियां दोनों ओर खुली थीं

और दूर-दूर तक खड़े थे छोटे-बड़े पेड़
आज बहुत दिनों बाद खुली खिड़की के पास सोया
बादल बरसते रहे
उनका झर झर संगीत पेडों से छन छन कर
इस खिड़की से आता रहा
उस खिड़की से निकल जाता रहा मुझे भिगोता हुआ
एक पंछी जिसका नाम नहीं जानता
रातभर एक विचित्र वलमित स्वर में बोलता रहा
रह रह कर
न जाने उस स्वर में क्या था—
मिलन का उल्लास था
कि वियोग का दर्द था
कि भीगने की अनुभूति थी
यह स्वर मेरी चेतना में तिरता रहा रात भर
मेरी नींद में उतरता रहा रात भर
फिर दिन को भी वही स्वर
हरियाली में डूबे उस पंछी को कभी देखा भी नहीं
लेकिन क्यों लगता है कि
वह मेरा बहुत अपना है
उसने छेड़ दिया है मेरे भीतर के आदिम राग को
और मैं लगातार बज रहा हूं—
सुख में दुख में
लगता है वह मैं ही हूं
जो न जाने कब से
रंगीन पत्थरों की भीड़ में खो गया था
जो अपने भीतर ही
अपने से अलग होकर सो गया था।

फूल

बाजार में सजा
प्लास्टिक के फूलों का उद्यान
क्या गज़ब की रंगत है
जैसे बिना मौसम के बहार आ गयी हो
न मिट्टी, न मिट्टी गोड़ने की समस्या
न खाद न पानी
न चिड़ियों से रखवाली
न मौसम का इंतजार
एक ही भाव से
हमेशा दहकते रहते हैं ये फूल
मैं इन्हें देर तक देखता रहा—
फिर आंखों में उतरा गये चुभते हुए से
अपने आंगन के खिलते मुरझाते फूल
घर पहुंचते ही
उन्हें उखाड़ फेंका
और दहकते हुए बाजार को सजा दिया
घर के पूरे अंतराल में
दिन बीते
महीने बीते
मौसम बीते
सारा घर एक रस इन रंगों में डूबा रहा
हवाओं ने कहा—
"हमें गंध चाहिए।"
मैं चुप रहा
मधुमक्खियों ने कहा—
"हमें रस चाहिए।"
मैं चुप रहा
तितलियों ने कहा—

"हमें कोमल स्पर्श चाहिए।"
मैं चुप रहा
मां ने कहा—
"मुझे पूजा के लिए फूल चाहिए।"
मैं चुप रहा
पत्नी ने कहा—
"मुझे वेणी के लिए फूल चाहिए।"
मैं चुप रहा
लेकिन जब बच्चे ने कहा—
"बापू, मुझे फूल चाहिए
फूलों की पहचान के लिए।"
तो मैं चुप न रह सका
हृदय हाहाकार कर उठा—
"हाय, मैंने क्या कर दिया कि
बच्चे फूलों की पहचान से वंचित हो गये।
मैंने प्लास्टिक के सारे फूल तोड़ डाले
और फावड़ा लेकर
अपने आंगन की मिट्टी से जूझने लगा
मिट्टी मुसकरायी
हवा खिलखिलायी
जल कल कल कल गाने लगा।
और सब मिलकर बोले—
स्वागत है मित्र तुम्हारा
अपने ही घर में
हाय,
तुम हमारे साथ हुए बिना ही
फूल पाने चले थे
देखो तो
कितने मौसम गुजर गये उदास-उदास
तुम्हें कुछ दिये बिना।

अक्सर मन करता है

सुषान्त सुप्रिय

सुषान्त सुप्रिय अंग्रेजी के प्राध्यापक हैं परंतु हिंदी में अच्छी कविताएं लिखते हैं। इनकी कविताओं ने आलोचकों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया है।

अक्सर
मन करता है—
बोलना सीख रहे बच्चे के लिये
मीठी तुतलाहट
बन जाऊं

पर-कटे पक्षी के लिये
ऊंची उड़ान
बन जाऊं

हर बेचैन तड़प के लिये
ट्रांक्विलाइजर
बन जाऊं

मैराथन दौड़ मे पिछड़े धावक के लिये
पैरों की फुर्ती
बन जाऊं

मृत्यु शय्या पर पड़े रोगी के लिये
जीवन की किरण
बन जाऊं

कहानी-संग्रहों में पथरा गए पात्रों के लिये
जीवन की गति
बन जाऊं

शब्द-कोषों के तिहाड़ में कैद अर्थों के लिये
स्वतंत्रता की अनुभूति,
बन जाऊं

हर भूखे गरीब के लिये
दो वक्त की रोटी
बन जाऊं ... □

वह अनजान आप्रवासी

अभिमन्यु अनत

मारीशस के महत्वपूर्ण कथाकार एवं कवि। मूलतः हिंदी में लिखते हैं। अनेक कहानी एवं कविता संग्रह प्रकाशित। अनेक सम्मानों से सम्मानित रचनाकार।

आज अचानक
हवा के झोंको से
झरझरा कर झरते देखा
गुलमोहर की पंखुड़ियों को
उन्हें खामोशी में झुलसते छटपटाते देखा
धरती पर धधक रहे अंगारों पर
फिर याद आ गया अचानक
वह अनलिखा इतिहास मुझे
इतिहास की राख में छुपी
गन्ने के खेतों की वे आहें याद आ गयीं
जिन्हें सुना बार-बार
द्वीप की प्रहरी मुड़िया पहाड़
दहल कर कांपा बार-बार
डरता था वह भींगे कोड़ों की बौछारों
इसलिए मौन साधे रहा
आज जहां खामोशी चीत्कारती है
हरियालियों के बीच की तपती दोपहरी में
आज अचानक फिर याद आ गये
मजदूरों के माथे के माटी के वे टीके

नंगी छाती पर चमकती बूंदें
और धधकते सूरज के ताप से
गुलमोहर की पंखुड़ियाँ ही जैसे
उनके कोमल सपने भी हुए थे राख
आज अचानक
हिंद महासागर की लहरों से तैर कर आयी
गंगा की स्वर-लहरी को सुन
फिर याद आ गया मुझे वह काला इतिहास
उसका बिसारा हुआ
वह अनजान आप्रवासी
देश के अन्धे इतिहास ने न तो उसे देखा था
न तो गूंगे इतिहास ने
कभी सुनाई उसकी पूरी कहानी हमें
न ही बहरे इतिहास ने सुना था उसकी चीत्कारों को
जिसकी इस माटी पर बही थी पहली बूंद पसीने की
जिसने चट्टानों के बीच हरियाली उगायी थी
नंगी पीठों पर सह कर बाणों की बौछार

बहा-बहा लाल पसीना
वह पहला गिरमिटया इस माटी का बेटा
जो मेरा भी अपना था तेरा भी अपना।

□

सागर और नाव

दिविक रमेश

'रास्ते के बीच' 'खुली आंखों में आकाश', 'खंड-खंड अग्नि' के सशक्त कवि। सोवियत लैण्ड नेहरू पुरस्कार से सम्मानित। आजकल दक्षिण कोरिया के हांकुक विश्वविद्यालय में अध्यापन-कार्य।

यहां नहीं है समुद्र
रूपायित
आंखों की भाषा में।

न यहां दीखते हैं
समुद्री जीव-जन्तु ही
न वनस्पतियां ही।

लहरों का दुनियावी शोर भी नहीं है यहां
न किस्से ही छोटी बड़ी मछलियों के

न यहां जहाज हैं
और न पक्षी ही
फिर फिर लौटते जहाज पर।

फिर भी
एक विशाल सागर है ज़रूर
लुप्त इन पहाड़ों में सरस्वती सा।
नहीं है ओर छोर तरल हरीतमाओं का।

यहीं है हाथ में लिए तख्ती सबूत की
मग्न नीले चिन्तन में
है इन सा।

बोधवृक्ष सा निष्काम है गाया पहाड़भी
आधार में।

संचित है यहां रहस्य कुसीनारा का
फूटता
शान्त
मधुर, भिक्खू मुस्कानों में।

उठी होंगी
बहुत ऊंची, बहुत ऊंची
लहरें, तूफ़ानी सोच की,
कितनी शान्त हैं ऊब
सहजे
नाव हे इन सा की।

नहीं जानता
कौन किसके लिए है अविचल
सागर और नाव में!

रह गया हूं बस
एक द्रष्टा की भूमिका में।

छूट गई है उंगली
जो थमी थी अब तक
कितनी ही सोचों में।

सुन रहा हूं
बहुत करीब हैं अब
भिक्खू प्रार्थनाएं। □

गाया सन या गाया पहाड दक्षिण कोरिया में है। एक मत के अनुसार गाया शब्द के पवित्र स्थान गया से ही लिया गया है। इस पर्वत पर कोरिया के तीन अत्यन्त प्रमुख बौद्ध मंदिरों में से एक है इन सा है जो शान्त सागर में जहाज की तरह प्रतीत होता है।

कभी तुम गुनगुनाओ

मोहन राणा

मोहन राणा का कविता संग्रह 'जगह' 1994 में प्रकाशित एवं चर्चित हुआ है। इंग्लैंड में रहते हुए भी दिल भारत की गलियों में घूमता है। अपनेपन की तलाश की यात्रा है ये कविताएं।

कभी तुम गुनगुनाओ

कभी तुम गुनगुनाओ
गीत जो अभी न गाया गया हो
लिख डालो उसे प्रतीक्षा की तरह
लिफाफे के पीछे वस्तुसूची की तरह,
रात में जागी हुई छायाएं उसे छुऐंगी
नम हवा, सर्र सर्र-सर्र सर्र,
बाारिश हो रही है

तकिए के नीचे एक गीत जो
अभी गाया ही नहीं गया प्रेम जो मिला
ही नहीं कहीं भी
आते जाते सड़क पर
पार्क में किसी दुकान पर
भरी बस में, कहीं भी नहीं
जैसे वह कोने में रखी कुर्सी हो
फिर भी बहुत दूर

कभी तुम गुनगुनाओ
अचानक खुश होते हुए
उम्मीद बनते हुए

संभाले रहो उसे
बचत खाते में डाल दो,
उंढेल दो चुल्लू के पानी को एक मर्तबान में
लिख डालो उस मुलाकात को कहीं
तारीख ही सही
बस कुरेद डालो उसे कहीं जहां संभव हो लौटना कभी

कभी तुम गुनगुनाओ गीत
जो अभी गाया ही नहीं गया
उसे दे दो पंख
ताकि वह उड़ सके,
कान ताकि वह सुन सके,
दो पांव कि वह निकल जाय
किसी यात्रा पर जिन पर तुम हमेशा जाना चाहते हो,
दे दो कोई नाम जिसे सिर्फ तुम ही जानोगे,
जुबान ताकि वह कर सके तुम से बात
घंटों तक बात खत्म ही ना हो।

चकनाचूर

चकनाचूर शीशे के टुकड़े
चकनाचूर है आकाश ऊपर
मैं खुद को छुपाना चाहता हूं
पर सबको मालूम है मैं कहां हूं
उनके उनकी आंखें सब जगह हैं हर अट्टालिका पर
उनके कान सब जगह हैं पेडों पर,
उनकी छायाएं हर कोने पर हैं,
मेरी हथेलियां भी नहीं छुपा सकती मुझे

थोड़ी देर पहले यह कार का चमचमाता
कीमती शीशा था, कोई फूलदान
अब टूटा हुआ कोई वायदा

ठीक अगले दिन गारंटी के खत्म होने के
नाशवान चीज़ें और लुप्त होती दुनिया
मैं कपड़ों के थान ओढ़ता हूं
फिर भी नहीं छुपती नग्नता
खिसकता है धरातल अपनी सुबहों और शामों के साथ
मौसम पशु-पक्षी, स्त्री-पुरुष, बच्चे, पूर्वज, महापुरुष, विचारक और अवतार भी
उनके साथ बस जैसे आने वाला है प्रलय, कौवे बेचैन मंडराते हैं सर्दियों के घूसर आकाश पर

चकनाचूर है एक कारखाना सड़क पर
चकनाचूर है श्रम दिन भर का
वर्षों का जैसे टूटे पड़े हैं कई मौसम
तीज-त्यौहार, इस जगह का संबंध टूटा हुआ है शेष विध से

सफेद पर्दों के पीछे छुपी हैं खिड़कियां
चकनाचूर दृश्यों को कोने पर बेचती दोपहर
ढलती ही नहीं, फोन पर बोलते हुए मैं कुछ याद करने की कोशिश करता हूं
पूरे हो जाते हैं तीन मिनट, खट खट गिरते हैं सिक्के
अंधकार की गहराई नापने,

मैं जोड़ता हूं अपने को
जैसे चकनाचूर कोई प्रतिमा हो मेरी देह
रोज का बस यही काम है, □

यात्रा संस्मरण

कैरेबियन के द्वीप में राष्ट्रपति

डॉ. विजय अग्रवाल

"राष्ट्रपति के रूप में उनका वहां पहुंचना वहां के लोगों के लिए मात्र एक राजनीतिक घटना नहीं थी, बल्कि कहीं उससे अधिक एक सांस्कृतिक घटना थी, एक ऐसी घटना, जिसे वहां के लोग देखने से कहीं अधिक महसूस कर रहे थे। उन्हें ऐसा लग रहा था कि उनके यहां भारत का राष्ट्रपति नहीं, बल्कि उनके पूर्वजों की मातृभूमि का प्रथम नागरिक उन्हें अपना आशीर्वाद देने आया है—एक राजनेता के रूप में भी और परिवार के वयोवृद्ध सदस्य के रूप मे भी।" कैरेबियन द्वीप में भारतीयों के आगमन के 150 वर्ष होने के अवसर पर आयोजित 'आगमन दिवस' समारोह में भारत के राष्ट्रपति डॉ शंकर दयाल शर्मा की उपस्थिति वहां के भारतीयों के लिए सार्थक उपलब्धि थी। हमारे विशेष आग्रह पर कैरेबियन द्वीप की संवेदनाओ से जोड़ रहे हैं डॉ. विजय अग्रवाल।

आसमान में सफेद-काले बादलों के टुकड़े घबड़ाए हुए मेमनो की तरह इधर-उधर भाग रहे थे। थोड़ी वर्षा भी हो चुकी थी। गन्ने के खेतो के बीच एक विशाल मच बना हुआ था, जिसके परदे हवाओं के थपेडों के कारण युद्ध के नगाड़े जैसी आवाज पैदा कर रहे थे। इस विशेष नगर के मुख्य द्वार पर स्थित थी—शिव और पार्वती की विशाल प्रतिमा, और उसके अंतिम छोर पर खड़ी थी—हाथ बांधे हुए स्वामी विवेकानद की विशाल मूर्ति। पूरा वातावरण *"दीदी तेरा देवर दिवाना"* गाने की धुन मे गूज रहा था। बूढ़े-जवान, औरतें, लड़के और लड़कियां कुर्ते-पायजामे, साडी, सलवार-कुर्ता तथा रंगीन दुपट्टा डाले उमड़ रहे थे। झांकी के रूप में दृश्य थे—*"रामचरितमानस"* लिए तुलसीदास, गाधी, भोजपुरी दूल्हा-दुल्हन, मंदिर, झोंपड़ी, कलश, झंडियां, हनुमान, शिव, लक्ष्मी, सरस्वती तथा पार्वती की मूर्तियों के।

यह दृश्य भारत के किसी मेले का नहीं, बल्कि भारत से हजारों मील दूर कैरेबियन

सागर की उभरी हुई धरती पर बसे त्रिनिदाद एवं टोबागो के *"दिवाली नगर"* का है, जो 30 मई, 1995 को भारतीयों के आगमन का 150वां *"आगमन दिवस"* मना रहा था। इस समारोह में शामिल होने के लिए भारत की ओर से गये थे—भारत के राष्ट्रपति डॉ. शंकर दयाल शर्मा। ठीक 150 वर्ष पूर्व 30 मई, 1845 को *"फतेल रोजाक"* जहाज में पहली बार 25' भारतीयों को वहां गन्ने की खेती के लिए बंधुआ मजदूर के रूप में भेजा गया था। यह क्रम सन् 1917 तक जारी रहा। इस बीच करीब एक लाख 45 हजार भारतीय मजदूर उस द्वीप पर भेजे गए। इन्हीं के पसीने की बूंद ने न केवल उस देश की अर्थव्यवस्था को संवारा, बल्कि वहां की धरती में भारतीय संस्कृति के बीज बोए। उसी की अभिव्यक्ति थी— *"दिवाली नगर"* का यह रंगारंग दृश्य।

त्रिनिदाद एवं टोबागो में भारतीय मूल के करीब 41 प्रतिशत लोग हैं। वहां के वर्तमान राष्ट्रपति नूर मोहम्मद हसन अली तथा विपक्ष के तत्कालीन नेता श्री वसुदेव पांडे, जो आज वहां के प्रधानमंत्री हैं, भारतीय मूल के ही हैं। श्री वसुदेव पांडे जब मंच पर बोलने के लिए आए, तो उन्होंने इन शब्दों में भारत के प्रति अपनी भावना उड़ेली—

"माई मातृभूमि, माई जन्मभूमि, माई नेटिव लैंड।"

राष्ट्रपति डॉ. शंकर दयाल शर्मा का इस देश में विशेष मान है। सन् 1988 में उपराष्ट्रपति के रूप में वे ऐसे ही अवसर पर गुयाना गए थे। तभी से त्रिनिदाद के भारतीयों का यह विशेष आग्रह था कि वे उनके भी घर आएं। राष्ट्रपति के रूप में उनका वहां पहुंचना वहां के लोगों के लिए मात्र एक राजनीतिक घटना नहीं थी, बल्कि कहीं उससे भी अधिक एक सांस्कृतिक घटना भी, एक ऐसी घटना, जिसे वहां के लोग देखने से कहीं अधिक महसूस कर रहे थे। उन्हे ऐसा लग रहा था कि उनके यहां भारत का राष्ट्रपति नहीं , बल्कि उनके पूर्वजों की मातृभूमि का प्रथम नागरिक उन्हें अपना आशीर्वाद देने आया है—एक राजनेता के रूप में भी और परिवार के एक वयोवृद्ध सदस्य के रूप में भी। वहां के लोग डॉ. शंकर दयाल शर्मा की उपस्थिति के कारण अंदर से कहीं गहरे रूप से भीगे हुए थे।

इस लघु भारत में डॉ. शंकर दयाल शर्मा की उपस्थिति ने लोगों के अंदर उमंग और उत्साह की लहर पैदा कर दी। डॉ. शर्मा सफेद चूड़ीदार पायजामा, कोसे का लंबा कोट और सफेद टोपी भी पोशाक में थे। उपस्थित जनसमूह ने उसमें अपने पूर्वज की झलक देखी। मंच पर पहुंचकर जब उन्होंने अभिवादन किया, तो सारे जनसमूह ने खड़े होकर उसी रूप मे अभिवादन किया। अपने भाषण के दौरान राष्ट्रपति डॉ. शंकर दयाल शर्मा जी ने उपस्थित भारतीय मूल के लोगों को जब *"बहनो और भाइयो"* शब्द से संबोधित किया, तो लगा कि मानो भीड़ की दबी आवाज को शब्द मिल गए हों। इस भीड़ में शामिल प्रत्येक व्यक्ति के अंदर भारतीय लोगों तथा भारतीय सस्कृति के प्रति एक *"नास्टेलजिया"* जैसे मोह की लकीरें स्पष्ट रूप से पढ़ी जा सकती थीं। उस समय उपस्थित जनसमूह

करीब-करीब उठ ही खड़ा हुआ, जब राष्ट्रपति डॉ. शंकर दयाल शर्मा ने भावुकता के साथ कहा—

> "भारत और त्रिनिदाद एवं टोबागो के हृदय हमेशा पास-पास रहेंगे, भले ही हमारे बीच हजारों मील तक फैला हुआ समुद्री फासला क्यों न हो।"

साढ़े बारह लाख की आबादी वाला यह देश "कैरेबियन का मोती" कहलाता है। सन् 1498 में कोलंबस ने इसकी खोज करके इसे अपने देश स्पेन को सौंप दिया था। इसलिए आज भी इसकी राजधानी का नाम *"पोर्ट ऑफ स्पेन"* है। दो सौ वर्षों के आधिपत्य के बाद यह अंग्रेजों के हाथ में चला गया था। तैंतीस वर्ष पूर्व 31 अगस्त, 1962 को यह देश पूरी तरह स्वतंत्र हुआ, और इसकी अपनी संसद बनी। सन् 1958 में यह द्वीप वैस्ट इंडीज समूह में शामिल हुआ था। सन् 1976 में यह राष्ट्रमंडल के अंतर्गत गणराज्य बना। बाद में सन् 1980 में स्वायत्त शासन के विस्तार की दृष्टि से *"टोबो हाऊस ऑफ असेम्बली"* की स्थापना की गई। हालांकि त्रिनिदाद एवं टोबागो एक अगस्त, 1976 को गणराज्य बना, लेकिन उनका गणतंत्र-दिवस प्रति वर्ष 24 दिसंबर को मनाया जाता है। ऐसा इसलिए, क्योंकि इसी दिन नए गणराज्य के अंतर्गत उनकी संसद की पहली बैठक हुई थी।

भारत में अधिकांश लोग वेस्ट इंडीज के नाम से परिचित है। वस्तुत. वेस्ट इडीज कुछ राष्ट्रों का एक समूह है, जिसमें त्रिनिदाद एवं टोबागो भी आता है। यहां का *"ओवल क्विंस स्टेडियम"* क्रिकेट के लिए विश्वभर में प्रसिद्ध है।

त्रिनिदाद एवं टोबागो कैरेबियन सागर में उभरे हुए दो द्वीपों के समूह से बना छोटा-सा राष्ट्र है। यह उत्तरी अमरीका और दक्षिण अमरीका महाद्वीपों को जोड़ने वाली संकरी पट्टी के दाहिने ओर छोटा-सा दो बिंदुओं की तरह दिखाई पड़ता है। इसे भौगोलिक रूप मे दक्षिण अमरीका महाद्वीप का विस्तार माना जा सकता है, जो वेनेजुएला के तट से मात्र 11 किलोमीटर दूर है।

5128 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र के इस देश की आबादी सन् 1990 के अनुमान मात्र सवा बारह लाख है। इसके करीब 45 प्रतिशत लोग भारतीय मूल के हैं। 41 प्रतिशत लोग अफ्रीकी मूल के हैं। कुल आबादी के 68 प्रतिशत लोग ईसाई धर्म के मानने वाले हैं। 25 प्रतिशत लोग हिंदू तथा शेष मुस्लिम धर्म का अनुसरण करते हैं। अंग्रेजी वहा की राजभाषा है। शिक्षा का प्रतिशत 98 और औसत आयु 70 वर्ष है।

इसकी आबादी का छठा भाग इसकी राजधानी पोर्ट ऑफ स्पेन में रहता है, जो पहाड़ी पर बना एक खूबसूरत नगर है। इसका एकमात्र द्वीप टोबागो त्रिनिदाद के उत्तर-पूर्व में 33 किलोमीटर दूर स्थित है। टोबागो का क्षेत्रफल मात्र 300 वर्ग किलोमीटर है। वहा करीब 50 हजार लोग रहते हैं। टोबागो विश्व मे पर्यटन केंद्र के रूप में प्रसिद्ध है।

अपनी यात्रा के दौरान डॉ. शंकर दयाल शर्मा ने टोबागो की विधान सभा को संबोधित किया। गाढ़ी हरियाली के बीच समुद्र के किनारे बने इस द्वीप की अपनी छोटी-सी विधान सभा है, जिसका छोटा-सा किंतु प्यारा भवन है। विधान सभा कक्ष ऐसा लगता है, मानो कोई छोटा-सा सम्मेलन कक्ष हो। पोर्ट ऑफ स्पेन से एक छोटे-से विशेष विमान द्वारा उड़ान भरकर राष्ट्रपति अपने प्रतिनिधि मंडल के साथ इस खूबसूरत स्थान पर पहुंचे। 31 मई, 1995 की शाम करीब पांच बजे जब राष्ट्रपति डॉ. शंकरदयाल शर्मा ने वहां की संसद को संबोधित किया, तो कक्ष में गजब की नीरवता छाई हुई थी। ऐसा लग रहा था, मानो संसद का हर सदस्य राष्ट्रपति के एक-एक शब्द को आत्मसात करना चाह रहा है। राष्ट्रपति डॉ शंकर दयाल शर्मा ने अपने संबोधन में स्थानीय संस्थाओं के महत्व को रेखांकित किया। उनकी इस बात को बड़े गौर से सुना गया कि—

> ''अनुभवों ने इस बात की पुष्टि की है कि जब जन-प्रतिनिधियों की संस्थाएं जड़ों के स्तर पर काम करती हैं, तभी लोगों की आवश्यकताओं को अच्छी तरह से पूरा किया जा सकता है।''

इससे पूर्व 30 मई की सुबह 9 बजे डॉ. शंकर दयाल शर्मा ने त्रिनिदाद एवं टोबागो की भी संसद को संबोधित किया था। वहां के छोटे किंतु भव्य संसद भवन में अध्यक्ष की जो कुर्सी है, वह भारत द्वारा ही भेंट की गई है। संसद भवन में स्पीकर ने डॉ. शंकर दयाल शर्मा के इस तथ्य को पूरी कृतज्ञता के साथ स्वीकार किया कि—

''हमारे देश को भारत द्वारा दिया गया अमूल्य उपहार आपके लोग हैं।''

डॉ. शंकर दयाल शर्मा ने अपने 34 मिनट के उद्‌बोधन मे संसदीय लोकतंत्र के महत्व को बताते हुए कहा—

> ''संसदीय लोकतंत्र का वह आधारभूत सूत्र है, जो हमारे देशों को तब जोड़ती है, जब हम अपने समाजों का निर्माण करते हैं, तथा मानवता के महान कल्याण के लिए सहयोग करते हैं।''

डॉ शर्मा का यह संबोधन अनेक स्थानों पर अनौपचारिक, हास-परिहास के भरपूर तथा स्थान-स्थान पर संकेतों के माध्यम से बात कहने की सुंदर प्रणाली से युक्त था। लोग उनके संबोधन से इतने अभिभूत थे कि लोगों को लगा कि घड़ी चल रही है, लेकिन समय थम गया है। एक नव-स्वाधीन लोकतांत्रिक देश के सदस्यों के लिए जैसे विश्व के सबसे बड़े लोकतांत्रिक देश के प्रथम नागरिक का यह संबोधन ऐतिहासिक था।

पोर्ट ऑफ स्पेन का ''*क्वींस ऑफ ओवल*'' का वह मैदान हम सब भारतवासियों के लिए बहुत अच्छी तरह परिचित है, जहां सुनील गावस्कर ने क्रिकेट का इतिहास रचा था। यह देश सचमुच मे क्रिकेट का देश है। जहां भी थोड़ी-सी जगह खाली दिखाई देगी,

वहीं लोग क्रिकेट खेलते हुए दिखाई देने लगेंगे। सुनील गावस्कर आज भी वहां का प्रिय हिंदुस्तानी नाम है। अगले दिन 31 मई को डॉ. शंकर दयाल शर्मा का इसी मैदान मे अभिनंदन किया गया। रंगीन पोशाकों में सजे-धजे और अपने हाथों में भारत-त्रिनिदाद एव टोबागो के रंगीन झंडे लिए हुए हजारों बच्चों ने पूरे उत्साह और उमंग के साथ राष्ट्रपति जी की अगवानी की। पूरा मैदान खचाखच भरा हुआ था। वहां के सास्कृतिक कार्यक्रमों ने हम सबको अभिभूत कर दिया। यह कार्यक्रम पूर्व निर्धारित नहीं था। इसे वहां के लोगो के विशेष अनुरोध पर आयोजित किया गया था, और यही इसकी सबसे बड़ी खूबसूरती थी।

इसके ठीक पहले 31 मई, 1995 को पोर्ट ऑफ स्पेन से करीब 100 किलोमीटर दूर पिसेंट टाऊन में एक सांस्कृतिक कार्यक्रम का आयोजन किया गया था। यह कार्यक्रम विदेशी भूमि पर, विदेशियों द्वारा भारतीय शैली में प्रस्तुत किया गया भारतीय कार्यक्रम था। शिव का तांडव नृत्य, फिल्मी नायिका का नृत्य, उत्सवों के नृत्य तथा सामूहिक गान जैसे कार्यक्रमों की धुनों ने थोड़ी देर के लिए यह भुला ही दिया था कि हम किसी दूसरे देश मे यह कार्यक्रम देख रहे हैं। स्टीलपेन की मीठी, मादक और उमंग भरी धुनों तथा इन शब्दो पर थिरकते कदम आज भी भुलाए नहीं भूलते—

भौजी मोरी गंगा नहाई आई रे।
नैन लागी जैसे पियाला शराब का,
का कहें भौजी तौहार शबाब का।
रस की गगरिया छलकाई आई रे।
भौजी गोरी गंगा नहाई आई रे।।

भारतीय मूल के लोगों मे आज भी कजरी, चैती और विरहा की धुनें मौजूद हैं। वे दिवाली, होली और ईद उसी तरह मनाते हैं, जिस तरह हम भारतीय। रूप जरूर थोड़ा बदल गया है, लेकिन उत्साह किसी मायने मे कम नहीं है। "*रामचरितमानस*", "*हनुमान चालीसा*" और "*कुरान*" आज भी उनके प्राण है। मजेदार बात यह है कि नयी पीढ़ी के अनेक ऐसे लड़के और लड़कियां मिल जाएगी, जिन्हे "*हनुमान चालीसा*" तो पूरी तरह याद है, लेकिन उसका अर्थ नहीं समझते। ऐसा इसलिए नही है, क्योंकि वे अर्थ समझना नही चाहते। बल्कि इसलिए है, क्योंकि उन्हें हिंदी नहीं आती। लगा कि यदि वहां के लोगों को हिंदी सिखाई जा सके तो यह दोनों देशों के भावनात्मक संबंधों के लिए अत्यंत उपयोगी होगा।

30 मई की दोपहर मे पहुंचने के बाद शाम 5 बजे राष्ट्रपति जी ने वहां के शहीद स्मारक पर भारत की ओर से पुष्प-गुच्छ अर्पित किया। इसके ठीक बाद घनी काली बदली और हल्की-फुल्की बूंदा-बांदी के बीच उन्होंने महात्मा गांधी की प्रतिमा को माल्यार्पण किया। उन्होंने "*लक्ष्मी गर्ल्स हिंदू कॉलेज*" की नींव रखी। त्रिनिदाद एवं टोबागो के राष्ट्रपति श्री

नूर मोहम्मद हसन अली ने भारत के राष्ट्रपति के सम्मान में रात्रि-भोज का आयोजन किया। राष्ट्रपति डॉ. शंकर दयाल शर्मा ने इस अवसर पर याद दिलाया कि—

> "हमारे दोनों देशों को, जिन्होंने एक-से अतीत का अनुभव किया है, विशेष जिम्मेदारी है कि वे यह सुनिश्चित करें कि ऐसे उपनिवेशवादी शोषण के अनुभव दोहराए नहीं जाएंगे। इसलिए हमें अधिक न्यायसंगत विश्व-व्यवस्था के निर्माण के लिए प्रयास करने चाहिए।"

30 मई, 1995 को त्रिनिदाद एवं टोबागो की राजधानी पोर्ट ऑफ स्पेन में राष्ट्रपति डॉ शंकर दयाल शर्मा का नागरिक अभिनंदन किया गया। वस्तुतः यह नागरिक अभिनंदन एक ऐसा प्रतीक-समारोह था, जिसके द्वारा वह देश भारत के प्रति अपना सम्मान व्यक्त कर रहा था। छोटे-से हाल में नगर के सम्मानित नागरिक उपस्थित थे। सम्मान के रूप में डॉ. शंकर दयाल शर्मा को पोर्ट ऑफ स्पेन नगर की कुंजी भेंट की गई। जैसे ही उन्होंने कुंजी ग्रहण की, वैसे ही हाल तालियों की गड़गड़ाहट से इस प्रकार गूंज उठा, मानो की ढेर सारे कबूतर एक साथ पंख फड़फड़ा रहे हों। राष्ट्रपति ने उस नगर के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करते हुए यह महत्वपूर्ण बात कही कि—

> त्रिनिदाद एवं टोबागो और भारत जैसे देश इस बात के उदाहरण है कि विभिन्न भाषा के लोग एक-दूसरे से बातचीत कर सकते है, विभिन्न संस्कृति के लोग एक-दूसरे को समझ सकते है, तथा विभिन्न धर्मों की जड़े एक जैसे मूल्यों और प्रतिबद्धताओं मे है। यह इस बात का प्रमाण है कि विभिन्नता अपने क्षितिज को कितना फैला सकती है, और एक संस्कृति को समृद्ध कर सकती है।"

त्रिनिदाद एवं टोबागो के लोगों और वहां के जन-संचार माध्यमों ने राष्ट्रपति डॉ. शंकर दयाल शर्मा की इस यात्रा को जितने मुक्त भाव से सराहा, वह अपने आप में अद्‌भुत था। वहां के मुख्य समाचार-पत्रों—"*डेली एक्सप्रैस*", "*त्रिनिदाद गार्जियन*" और "*न्यूज डे*" ने उनके आगमन को अपने मुख पृष्ठ पर प्रथम स्थान दिया। चूंकि ये तीनों ही प्रमुख समाचार-पत्र रंगीन छपाई वाले थे, इसलिए राष्ट्रपति के आगमन, स्वागत और विभिन्न समारोहों में उनकी भागीदारी की खबरें रंगीन प्रभाव लिए हुए विस्तार के साथ प्रकाशित किए गए। वहां के समाचार-पत्रों ने संपादकीय, अग्रलेखो और टिप्पणियों के द्वारा इसके महत्व को भी पूरी तरह रेखांकित किया।

सच तो यह है कि त्रिनिदाद एवं टोबागो के साथ भारत के सबध 30 मई, 1845 को उसी दिन स्थापित हो गए थे, जब "*फैटेल राजेक*" जहाज 225 बधुआ मजदूरों को लेकर कलकत्ता से त्रिनिदाद पहुंचा था। 16 हजार किलोमीटर से भी अधिक की दूरी को

यात्रा के दौरान मध्य प्रदेश, बिहार और मद्रास से लाए गए न जाने कितने मजदूर मृत्यु को प्राप्त हुए, और थोड़े-बहुत वहां पहुंचे थे। इन लोगों में सबसे ज्यादा 85 प्रतिशत हिंदू थे, और शेष मुसलमान और ईसाई थे। ये बंधुआ मजदूर वहां गन्ने की खेती में काम करने के लिए भेजे गए थे। यह क्रम सन् 1917 तक जारी रहा, और इस दौरान कुल करीब डेढ़ लाख भारतीय त्रिनिदाद की धरती पर उतारे गए। जो लोग 1917 में अपनी मां की गोद में बैठकर वहां गए थे, उनमें से कुछ लोग जर्जर शरीर को लेकर आज भी जीवित हैं। ऐसे लोगों को देखना और उन लोगों से बात करना इतिहास के पुराने क्षणों को विचित्र तरीके से जीवंत कर देता है।

भारत के किसी भी राष्ट्रपति की इस देश की यह प्रथम यात्रा थी। जबकि राष्ट्रपति डॉ. शंकर दयाल शर्मा की इस देश की यह दूसरी यात्रा थी। सन् 1988 में उपराष्ट्रपति के रूप में वे त्रिनिदाद एवं टोबागो गए थे। डॉ. शंकर दयाल शर्मा की इस यात्रा से भारतीय मूल के स्थानीय लोगों को काफी भावनात्मक सहारा मिला है। त्रिनिदाद एवं टोबागो ने काश्मीर मामले पर भारत के पक्ष को समर्थन किया, और इस बात के प्रति अपनी सहमति व्यक्त की कि संयुक्त राष्ट्र संघ की *"सुरक्षा परिषद"* में भारत को स्थायी सदस्य के रूप में शामिल किया जाना चाहिए। इस यात्रा से न केवल दोनों देशों के राजनीतिक और आर्थिक संबंधों में इजाफा होगा, बल्कि उससे भी कहीं अधिक भावनात्मक संबंध गहरे हुए हैं। निश्चित रूप से दोनों देशों के हृदय में इस यात्रा के दृश्य लंबे समय तक उभरते रहेंगे। त्रिनिदाद एवं टोबागो सरकार ने 30 मई को *"आगमन दिवस"* घोषित किया है। प्रतिवर्ष इस दिन *"राष्ट्रीय अवकाश"* रहेगा। इस प्रकार प्रतिवर्ष दोनों देशों के लोग इस दिन अपनी स्मृतियों को ताजा करते रहेंगे।

सन् 1995 में त्रिनिदाद एवं टोबागो भारतीयों के आगमन का 150वां दिवस मना रहा है। निश्चित रूप से इस कार्यक्रम को लेकर कुछ स्थानीय राजनीतिक विवाद भी थे। वहां के अफ्रीकी मूल के लोगों की यह शिकायत थी कि आगमन दिवस के रूप में भारतीयों को ही क्यों लिया जा रहा है, जबकि अफ्रीका के लोग भी यहां आए हैं, और उनकी आबादी भी भारतीय मूल के ही करीब है। उनकी शिकायत के कारण ही इस समारोह के शीर्षक से *"इंडियन"* शब्द को हटाया गया, और उसे *"इंडियन एराइवल डे"* न कहकर केवल *"एराइवल डे"* कहा गया। यह बात गौर करने लायक है कि इस दिन को अर्थात् 30 मई को राष्ट्रीय अवकाश रहेगा। यह राष्ट्रीय अवकाश अलग से घोषित नहीं किया गया, बल्कि उसकी जगह एक राष्ट्रीय अवकाश को समाप्त किया गया है। समाप्त किया गया दिवस है— *"व्हिट डे"*। *"व्हिट डे"* ईसाइयों का त्यौहार था, जो हर साल 5 जून को मनाया जाता था। इससे यह पता लगता है कि भारत एवं त्रिनिदाद एवं टोबागो के बीच संबंधों को सुदृढ़ बनाने की कितनी अधिक संभावनाएं हैं। □

मुसाफिर मित्र को अंतिम प्रणाम!

कन्हैयालाल नन्दन

अनन्य हिंदी सेवी, वरिष्ठ सांसद एवं साहित्यकार शंकर दयाल सिंह जी का 26 नवंबर 1995 को हृदय गति रूक जाने से असामयिक निधन हो गया। गगनाञ्चल से डॉ. शंकर दयाल सिंह का अटूट संबंध था। यात्रा पर जाने से पूर्व उन्होंने गगनाञ्चल के लिए लौटते ही एक लेख देने का वायदा किया था। उनका पुण्य स्मरण करते हुए श्रद्धा-सुमन अर्पित हैं।

काल ने हिंदी के एक एक जबरदस्त योद्धा, देश-विदेश में हिंदी की अलख लगाने वाले एक प्रखर सांसद शंकर दयाल सिंह को हमसे छीन लिया। हिंदी भाषा, साहित्य और साहित्यकारों के लिए जुझारू ढंग से संसद में अपनी बात रखने के लिए वे विख्यात थे। विष्णुप्रभाकर के मकान को लेकर उन्होंने राज्यसभा में जो प्रखर वक्तव्य दिया था, उससे हर हिंदी वालों के ही नहीं, हर भारतीय साहित्यकार के मन से असामाजिक तत्वों के सामने निरीहता का भाव तिरोहित हुआ था। उसके दूसरे दिन जब मैं उन्हें इस तेवर के लिए अपनी कृतज्ञता अर्पित करने गया तो अपने ठहाकेदार अंदाज़ में एक विजयी पहलवान की धज से दोनों बाहें फैलाकर सीने में अँगोरते हुए बोलेः "भाई साहब, आप कृतज्ञता नहीं, शुभकामना दीजिए कि 'शुभ करमन ते कबहूं न टरौं'। विष्णु प्रभाकर अब इस अवस्था में न्याय के लिए भटके, यह हम सबके लिए डूब मरने जैसी बात है। गृहमंत्रालय ने इसकी पूरी छानबीन करने का आश्वासन दिया है।"

थे वे जनता दल के सांसद, लेकिन हर पार्टी के नेताओं और कार्यकर्ताओं से उनके अंतरंग संबंध थे। जब मारीशस में विश्व हिंदी सम्मेलन हुआ तो वे कांग्रेस में थे और भोजपुरी मे उन्होंने जिस आत्मीय अंदाज से दिल्ली की कांग्रेस सरकार की नीतियों से मारीशस

के भारतवंशियों को जोड़ने की कोशिश की, वह उनकी अपने दल की निष्ठा और अपने दल की प्रमुख श्रीमती इंदिरा गांधी के प्रति आदर का प्रमाण था। लेकिन श्रीमती गांधी के प्रति उनका यह आदर इमरजेंसी के दिनों में एक तिलमिलाहट और आक्रोश में बदल गया, यह उनकी भारतीय प्रजातंत्र के प्रति निष्ठा और आदर का प्रमाण था।

इन दोनों पहलुओं को देखने के सुअवसर मुझे मिले। मारीशस में भी मैं उनके साथ था और श्री इंद्र कुमार गुजराल के सूचना प्रसारण मंत्रालय से हटाये जाने के संकेत पढ़ने के समय भी। दोनों ही अवसरों के विरोधाभास की पृष्ठभूमि साफ करते हुए उन्होंने अपना एक लेख मुझे पढ़ने को दिया, जिसके प्रकाशित करने का जोरदार इसरार मैंने उनसे किया। वह लेख अब उनकी एक पुस्तक में भी प्रकाशित है। इसमें उनकी साफ़गोई, शालीनता और राजनीतिक प्रतिद्वंद्विता के बीच आत्मीय संबंधों में कटुता का अभाव प्रशंसनीय है।

मित्रों के प्रति उनके मन में जो सम्मान रहा है, उसका प्रतिबिंबन उनके दैनंदिन व्यवहार मे देखने को मिलता था। पटना से मैं सपत्नीक कार द्वारा काठमांडू जा रहा था। पटना सिर्फ मुझे कुछ घंटे रूकना था, लेकिन उतने कम समय में भी उन्होंने पता नहीं कैसे और किस संकेत से हमारे रास्ते के उपयोग के लिए थोड़ी मिठाई, थोड़ा भूजालाईचना और थोड़ी तिलपट्टी मंगा कर विदा देते समय कार में रखवा दी। सिर्फ इतना बोले : 'यह रास्ते मे मेरी याद दिलाने के लिए है।'' ऐसे छोटे-छोटे आत्मीय वाक्य अब उनकी याद को अक्षुण्य बनाये ही रखेंगे।

तमाम व्यस्तता के बावजूद वे लिख बहुत लेते थे। दैनिक पत्रों से लेकर विमान की उड़ान पत्रिकाओं तक में छपे दिखते थे। नजीर बनारसी की शायरी पर उनका लेख मैंने एक उड़ान यात्रा में ही पढ़ा था। उस लेख मे उद्‌धृत अशआर उनकी कविता की पकड़ को उजागर करते थे। राष्ट्रपति डॉ. शंकर दयाल शर्मा के साथ जब वे यात्रा पर गये तो वहा से 'नवभारत टाइम्स' के लिए जैसी रिपोर्टें भेजते रहते, वे हिंदी रिपोर्टिंग को एक नया आयाम देती मालूम होती थीं जिनमें उस देश विशेष की ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक पृष्ठभूमि तो होती ही थी, घटना विशेष का विश्वजनीन आयाम भी होता था जिसमें भारतीय हित जुड़े हुए मालूम पड़ते थे। संस्मरण, रिपोर्ताज और यात्रा वृत्तांत का ऐसा अनूठा सम्मिश्रण और अपने आप में बेहद पठनीय सम्मिश्रण, दे सकने वाला भारत की माटी से जुड़ा हिंदी का यह अद्वितीय 'पत्रकार' शंकर दयाल सिंह अपने निधन से बहुत कुछ सूना कर गया। वह शख्श आयु का कलधान चीर कर पुरानी नयी पीढ़ी के बीच सेतु बनाता था। शिकायत करो तो शिकायत सुनने भाग कर चला आता था। वह अचानक इस तरह हमारे बीच से चला जायेगा, इसकी तो कभी कल्पना भी नहीं थी।

संसदीय राजभाषा समिति के अध्यक्ष के रूप में अभी जब वे बंबई आये तो उसी होटल सैंटोर में ठहरे थे, जिसमें मैं आजकल ठहरा हुआ हूं। होटल के महाप्रबंधक श्री

अमिताभ देवेन्द्र ने खबर सुनकर मेरे कमरे में फोन किया और उनके निधन पर अपना अफसोस ही नहीं जताया, उनके संक्षिप्त प्रवास के दौरान आत्मीय एहसास की अनुगूंज दोहराते रहे। उनके इस तरह जाने से सारा देश सकते में है, उनका दल सकते में है, संसद सकते में है, मित्र और परिवारीजन तो हैं ही। श्रीमती पुष्पा अवस्थी की काव्यपंक्तियां अक्सर मैं याद करता रहता हूं :

आसपास कोई नहीं सामने सफर है
जहां साँस टूट जाये वही मेरा घर है।

शंकर दयाल सिंह (डॉ. कर्णसिंह और डॉ. सिंघवी जैसे उनके मित्रों के लिए सिर्फ शंकर) हमेशा सफर में रहने वाले वयक्ति थे, जो भगवतीचरण वर्मा के शब्दों में *'हैं आज यहाँ कल वहाँ चले'* लेकिन मस्ती का आलम साथ चलता था। रामायण विद्यापीठ के पिछवाड़े एक कमरे में रहे या गुरुद्वारा रकाबगंज के अपने सांसद निवास में, जहां भी रहे अपनी भारतीयता की मस्ती के साथ रहे, उनकी चाल में तो मस्ती थी ही, (झूम के चलते थे) उसी मस्ती के साथ सोये और सफर में जहां सांस टूट गयी वहीं हमसे जुदा हो गये। उस घर चले गये जो घर सबका है और अंततः सबको जाना है।

इस प्यारे मुसाफिर मित्र को मेरा आखिरी प्रणाम! □

हरिशंकर परसाई से यादगार मुलाकात

घनश्याम जौली

हरिशंकर परसाई हिंदी-व्यंग्य के आधार स्तंभ हैं। इनकी व्यंग्य रचनाओं ने अनेक वर्षों तक पूरे हिंदी-साहित्य को प्रभावित किया है। परसाई की रचनाओं के साथ-साथ उनसे व्यक्तिगत साक्षात्कार करना एक अविस्मरणीय अनुभव है। 10 अगस्त 1995 में उनका अकस्मात निधन हो गया। इससे कुछ माह पूर्व ही घनश्याम जौली जबलपुर घरेलू कार्य से गए थे। घनश्याम जौली दिल्ली विश्वविद्यालय के कॉलेज आफ वोकेशनल स्टडीज के प्रकाशन-प्रबंध विभाग में रीडर हैं। वह साहित्य के आम पाठक हैं जो रचनाकार की अपेक्षा रचना पर अधिक ध्यान देता है। हरिशंकर परसाई से उनकी मुलाकात साहित्यिक कम, आम आदमी की बातचीत एवं अनुभव अधिक हैं।

मैं आरंभ में ही स्पष्ट कर दूं कि मैं कोई साहित्यकार या आलोचक नहीं हूं। साहित्य से मेरा इतना ही संबंध है कि प्रेम जनमेजय, रमेश उपाध्याय, पूरबी पंवार जैसे लेखक मेरे कॉलेज में सहयोगी प्राध्यापक हैं। इनके साथ उठ बैठकर थोड़ा बहुत अच्छा हिंदी-साहित्य पढ़ने-सुनने को मिल जाता है। आरंभ के कुछ वर्ष में कॉलेज में पुस्तकालयाध्यक्ष रहा हूं इसलिए पुस्तकों के प्रति एक स्वाभाविक प्रेम है।

पिछले दिनों मुझे घरेलू कार्यवश जबलपुर जाना था। मैंने अपना इरादा जब अपने सहयोगी प्राध्यापक एवं अभिन्न मित्र प्रेम जनमेजय को बताया तो उन्होंने छूटते ही सलाह दी, सलाह क्या दी, एक तरह का अनुरोध किया कि मैं जबलपुर में हिंदी-व्यंग्य-साहित्य के पितामह हरिशंकर परसाई से अवश्य मिलकर आऊं। मैंने कॉलेज की लाइब्रेरी से परसाई रचनावली लेकर कुछ रचनाएं पढ़ी थीं। हिंदी साहित्य के बारे में ज्यादा जानकारी न होने के कारण इतने बड़े लेखक से मिलने में एक संकोच था। संकोच ये भी था कि मैं क्या बातें करूंगा। इसका इलाज प्रेम जनमेजय ने ये ढूंढा कि मेरे हाथ में पांच छह प्रश्न थमा दिए। मैंने प्रेम से चलते हुए कहा भी—यार, जो इतना बड़ा लेखक है, वो मेरे जैसे आम आदमी

से क्यों मिलेगा? वो मुझसे बातचीत करने को क्यों राजी होंगे? मुझे तो टरका ही देंगे।"

प्रेम जनमेजय ने कहा कि इसका उत्तर मुझे जबलपुर जाकर मिल जाएगा।

सोलह घंटे के थका देने वाले सफर के बाद मैं जबलपुर पहुंचा। वहां हमारे मेजबान ने एक अच्छे आरामदायक होटल—सामदड़िया में ठहरने का इंतजाम किया हुआ था। मुझे जब पता चला कि ये होटल नेपियर टाउन में ही है, जहां परसाई जी रहते हैं तो खुशी और घबराहट दोनों ही हुई। खुशी यह सोचकर कि मैं इतने करीब हूं और घबराहट इस संकोच के कारण कि कैसे मिलूं, और न मिला तो प्रेम छोड़ेगा नहीं क्योंकि मेरे पास दूरी का कोई बहाना नहीं मिलेगा।

जबलपु' में मैं जिस पारिवारिक-समारोह में शामिल होने के लिए गया था, वह रात को होना था, और अभी सुबह के नौ ही बजे थे। नाश्ते के बाद, हमारे मेजबानों ने मेड़ाघाट और धुंआघर दिखाने का प्रोग्राम बनाया हुआ था। मैं प्रेम जनमेजय से परसाई जी का टेलीफोन नं. लेते आया था, पर पता लाना भूल गया था। बातचीत में इतना याद था कि वे नेपियर टाउन में रहते हैं। एक तरफ मेड़ाघाट और धुआंघर जाने का कार्यक्रम था, दूसरी ओर प्रेम जनमेजय का आग्रह तथा तीसरा ये संकोच बार-बार आ रहा था कि मैं अपना परिचय क्या दूंगा, क्या वो मिलने को राजी होंगे या *'बड़े आदमी'* की तरह बात करना ही पसंद नहीं करेंगे। ये शायद प्रेम का बार-बार किया गया आग्रह था जिसने मेरी अंगुलियों से परसाई जी का टेलीफोन मिलवा दिया।

घंटी बजी।

किसी ने फोन उठाया और एक प्रभावशाली, शांत तथा गहरी आवाज ने पूछा—"कौन"

"क्या मैं हरिशंकर परसाई जी से बात कर सकता हूं।"

मैं संकोच-स्वर में बोला।

"मैं बोल रहा हूं, आप कौन?"

इस उत्तर के लिए मैं बिल्कुल तैयार नहीं था। क्योंकि प्रेम ने मुझे बताया था कि परसाई जी बीमार हैं। मैंने सोचा था कि परिवार का कोई अन्य सदस्य फोन उठाएगा और मैं किसी भूमिका के साथ परसाई जी से बात कर सकूंगा।

परसाई जी क्योंकि खुद टेलीफोन पर थे इसलिए मुझे हड़बड़ी में अपना परिचय देना पड़ा। मैंने अपना नाम बताया और कहा कि मैं दिल्ली विश्वविद्यालय के वोकेशनल कॉलेज में पढ़ाता हूं तथा प्रेम जनमेजय जो आपके प्रशंसक हैं, मेरे सहयोगी रहे हैं, उन्होंने मुझे कहा था कि मैं जबलपुर जा रहा हूं तो आपसे अवश्य मिलकर आऊं। मेरी आपसे मिलने की इच्छा है। प्रेम से आपके बारे में बहुत सुना और पढ़ा है।

कुछ क्षण मौन रहे, फिर बोले, "हां, प्रेम जनमेजय को मैं जानता हूं, परंतु आपका नाम पहली बार सुना है, आप क्या लिखते हैं?"

जैसे एक प्रश्नचिह्न मेरे सामने खड़ा हो गया और मुझे लगा कि मुलाकात नहीं हो पाएगी। जब मैं लेखक नहीं हूं तो वो क्यों मिलेंगे। मैंने कहा, "जी, मैं लेखक नहीं हूं, मेरा विषय पुस्तक प्रकाशन है, मैं प्रेम के साथ कॉलेज में पढ़ाता हूं।"

"आपका कार्यक्रम क्या है, कब मिलना चाहते हैं?"

यह सुनकर मेरे संकोची मन में उत्साह जाग उठा।

मैंने कहा—आज रात को एक विवाह में जाना है, तथा कल दोपहर लौटना है। यदि आज शाम आप मिलने का समय दे सकें तो आपका 'दर्शन' करना चाहूंगा।'

मेरा 'दर्शन' शब्द कहने पर एक हल्की सी हंसी सुनाई दी। यह शायद एक व्यंग्यकार का 'दर्शन' जैसे खोखले शब्द पर प्रतिक्रिया थी। अगले क्षण परसाई जी बोले, "आप शाम चार बजे आ सकते हैं।"

परसाई जी से मिलना इतना सहज हो जाएगा, ये मेरी कल्पना के बाहर था। मैंने "अच्छा जी' कहा, पर जल्दी में न तो धन्यवाद किया और न ही घर का पता पूछा।

मैं दिल में एक खुशी के लिए मेड़ाघाट और धुआंघर देखने निकल पड़ा। शहर से लगभग बीस किलोमीटर की दूरी पर मेड़ाघाट और धुआंघर जबलपुर का रमणीय स्थल हैं। ये सब देखकर, होटल पहुंचते-पहुंचते साढ़े चार बज गए और परसाई जी से मिलने का समय चार का था। पहुंचने में देरी के कारण हृदय डर से भर गया कि अब परसाई जी मिलेंगे या नहीं। फिर फोन घुमाया और इस बार एक महिला स्वर सुनाई दिया। मैंने अपना परिचय देते हुए, हुई देरी की क्षमा मांगी। उन्होंने शायद परसाई जी से कुछ पूछा और मुझे निसंकोच आने को कहा। इस बार मैं चूका नहीं और घर का पता पूछ लिया।

होटल से बाहर निकल टेपरिकार्डर के लिए एक कैसेट खरीदा—प्रेम जनमेजय के सवालों के जवाब जो लेने थे। दुकानदार ने ही मुझे बता दिया कि मैं रिक्शे वाले से 'होम साईंस कॉलेज' के पास जाने को कहूं। मैंने वैसा ही किया और मैं पाच मिनट मे परसाई जी के घर के सामने था।

बाहर ग्रिल गेट पर दस्तक देते ही एक मध्य आयु के सज्जन आए और मेरा परिचय जानने के बाद बैठक में ले गए। ये परसाई जी को देखने का मेरा पहला अवसर था। परसाई जी बिस्तर पर अधलेटे हुए थे, गोल तकिया पीठ के नीचे था और हल्की रजाई ओढ़े हुए थे।

"आइए" कहकर परसाई जी उठने को हुए, तो मैंने उनसे लेटे रहने का आग्रह किया तथा उनका अभिवादन किया। मैं उनके सामने वाली कुर्सी पर बैठ गया। देखने में वो अस्वस्थ लग रहे थे परंतु उनकी वाणी उनके विचार काफी प्रखर थे। बात संक्षेप में करते हुए भी वे बहुत कुछ कह रहे थे। वह, सत्य जिसे हम स्वीकार करते हुए अक्सर हिचकिचाते हैं, उसे वे सहज रूप में बोल रहे थे। परसाई जी से देश की राजनीति, समाज, आर्थिक-समस्याओं

के बारे में जो बातचीत हुई तो जैसे मेरे मन ने अंदर ही अंदर संकल्प कर लिया कि मैं लौटकर इनका साहित्य पूरा पढ़ूंगा।

सामान्य बातचीत के दौरान जब मैंने प्रेम जनमेजय द्वारा दिए गए प्रश्नों के आधार पर कुछ पूछना चाहा तो परसाई जी बोले—"अब मैं वृद्ध हो चुका हूं। बातचीत के दौरान कई बार विरोधी बातें निकल जाती हैं। अतः अच्छा होगा कि आप प्रश्न दे जाएं, मैं जवाब लिखकर भिजवा दूंगा।"

ये सुनते ही मुझे मेरा टेपरिकार्डर, खरीदा हुआ कैसेट बेकार लगने लगा। प्यासा कुंए के पास से यूं ही लौट जाए तो ...। मन में निराशा हुई परंतु मैंने बातचीत का क्रम जारी रखा, शायद बातचीत में इन सवालों के जवाब मिल जाएं।

बातों-बातों में उन्होंने मुझे जबलपुर के सामाजिक वातावरण के बारे में काफी कुछ बता दिया। मुझे पंजाबी जानकर उन्होंने सूचना दी कि जबलपुर में पंजाबी बहुत संख्या में बसे हुए हैं।

बातों का सिलसिला अर्जुन सिंह के पार्टी से निकाले जाने से लेकर राव-सरकार के भविष्य तक चला। परसाई जी ने इसे पावर-गेम का परिणाम कहा। परसाई जी ने कहा कि आज सभी राजनीतिक दल, आम लोगों से दूर होते जा रहे हैं। मेरे ये बताने पर कि मैं वोकेशनल कॉलेज में पुस्तक-प्रकाशन विषय पढ़ाता हूं तो उन्होंने व्यावसायिक शिक्षा पर बातचीत आरंभ कर दी। उन्होंने इस शिक्षा को आज के लिए बहुत उपयोगी कहा। उन्होंने कहा—"व्यावसायिक शिक्षण वो सच है जिसे आज के शिक्षाविद सही तरह से समझ नहीं पाए हैं। शिक्षा के नाम पर करोड़ों रुपया खर्च हो रहा है पर कोई लाभ नहीं है। शिक्षा और रोजगार का गहरा संबंध है। शिक्षा को रोजगार से जुड़ा होना चाहिए।"

मैं आश्चर्यचकित हो रहा था कि बिस्तरे पर लेटा हुआ ये बीमार व्यक्ति मानसिक रूप से कितना सजग है, स्वस्थ है। हम थोड़ा सा बीमार हो जाते हैं तो मानसिक रूप से डिप्रेस हो जाते हैं। परंतु परसाई जी तो मानसिक रूप में किसी स्वस्थ आदमी से अधिक स्वस्थ थे। किसी ने ठीक कहा है—"मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।"

इस बीच चाय आ गयी। चाय के साथ रसगुल्ले, पेड़े, पापड़ी, भुजिया थी। इतनी आवभगत मुझ जैसे अनजाने आदमी की। सच कहूं तो मैं इस आवभगत से चमत्कृत था। ऐसा स्वागत तो कोई नजदीकी रिश्तेदार ही कर सकता है।

मैंने पहले कहा कि मैंने परसाई जी का साहित्य अधिक नहीं पढ़ा है। न ही कह सकता हूं कि वो कितने श्रेष्ठ साहित्यकार हैं परंतु ये बात दावे के साथ कह सकता हूं कि वे एक श्रेष्ठ मानव हैं। उनके हृदय में अपार स्नेह है और अपनें आने वाली पीढ़ी के लिए प्यार है।

मुझे लग रहा था कि शायद अपने स्वास्थ्य के कारण परसाई जी कुछ खाएंगे नहीं, परंतु मुझे अच्छा लगा जब उन्होंने मेरे साथ रसगुल्ला खाया।

परसाई जी ने ऐसा वातावरण बना दिया था कि मेरा संकोच न जाने कहां गायब हो गया था। अब मैं आराम कुर्सी पर बैठा, आराम से रसगुल्ले, भुजिया खा रहा था और चाय की चुस्की ले रहा था।

अचानक परसाई जी के मन में क्या आया कि उन्होंने कहा—"बताएं आपके प्रश्न क्या हैं? मैं संक्षेप में उत्तर देने की कोशिश करूंगा। विस्तार से अगर जवाब चाहिए तो लिखकर भिजवा दूंगा।"

मैंने झिझकते हुए पूछा—"आप तो व्यंग्य मे सूर्य की तरह चमेके है। आपने सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक विषयों पर व्यंग्य लिखे हैं, आप आज के व्यंग्य और व्यंग्यकार के बारे में क्या कहते हैं?"

परसाई जी ने जो कहा, मेरा यादाश्त के मुताबिक ये था—"किसी भी वस्तु का वर्णन भोगे बिना, उस स्थिति का अनुभव किए बिना लिखना ठीक नहीं है। पहले परिस्थितियों को सहना पड़ता है फिर उसका वर्णन किया जाता है। आज के व्यंग्यकार अनुभव का स्वाद चखे बिना ही वर्णन करते हैं, इसलिए उनमें तीखापन बहुत कम है।"

मैंने पूछा, "आज व्यंग्य पत्र-पत्रिकाओं का बेहद मांग बढ गई है। पहले व्यंग्य को इतना स्थान नहीं मिलता था जितना आज मिलता है। आज व्यंग्य लिखने वालों की भीड है।"

परसाई जी ने उत्तर दिया, मुझे बहुत अच्छा लगा। ये युवा-व्यंग्यकारों के लिए एक चुनौती भी है।

परसाई जी ने कहा—"व्यंग्य पहले भी लिखा जाता था, पहले भी लिखने वाले काफी थे। पहले भी पत्र-पत्रिकाएं बहुत छपती थीं। अंतर ये आ गया है कि जो अधिकाश लिखा जा रहा है वो व्यंग्य नहीं है आजकल व्यंग्य के नाम पर विनोद लिखा जा रहा है।"

ये सुनकर मुझे लगा जैसे परसाई जी आज के लेखन से सतुष्ट नही हैं। इसलिए मैंने पूछा—परसाई जी, आप तो हिंदी व्यंग्य के स्तंभ हैं और हर युवा व्यंग्यकार आपकी ओर दिशा पाने के लिए देखता है। अनेक लोग आपकी तरह लिखना चाहते हैं। आप आज के युवा लेखन से क्या अपेक्षा रखते हैं?"

इस प्रश्न पर एक और कड़वा-सच परसाई जी ने व्यक्त किया, "आज के व्यंग्यकार, सभी सीखे हुए लगते हैं। सर्वसंपन्न हैं। बहुत कम लोग हैं जो कुछ सीखने की भावना रखते हैं। आपके मित्र प्रेम जनमेजय एक ऐसे युवा व्यंग्यकार हैं जो सीखने के लिए तैयार रहते हैं। उनमें परिश्रम करने की इच्छा है, ये इच्छा बहुत कम लोगों में देखने को मिलती है। ये होनी चाहिए।"

"क्यों मिल गए आपको, आपके प्रश्नों के उत्तर"

परसाई जी ने एक प्रश्नचिह्न के साथ पूछा, और मैं निरूत्तर हो गया।

अब तक समय काफी हो गया था। एक घटा कब बीता पता नहीं चला जहा मैं

पांच मिनट के लिए आने को घबरा रहा था वहां एक घंटा पांच मिनट बीत गए। मैंने हाथ जोड़कर धन्यवाद किया और विदा ली। उन्होंने चलते हुए प्रेम जनमेजय के लिए स्नेह और आशीर्वाद भेजा।

होटल में लौटते हुए मैं सोच रहा था कि यदि मैं यहां न आया होता तो अपने समय की एक बड़ी हस्ती से मिलने की उपलब्धि से वंचित रह जाता। मैंने परसाई जी का आभार तो माना ही, मन ही मन प्रेम का भी माना जो हम मित्रों को साहित्य की ओर उकसाता रहता है।

तेज धार की संगमरमर की चट्टान और धुआंधर के झरने से उठने वाले पानी के शोर का स्वर कभी यादों में फीका पड़ जाए मगर परसाई जी के साथ बिताया एक-एक क्षण हमेशा याद रहेगा। रात में जब मैंने अपने मेजबान को बताया कि मैं परसाई जी से मिलकर आया हूं तो उसकी नजर में मेरे लिए सम्मान था। मेजबान ने कहा—परसाई जी हमारे जबलपुर के प्राईड (गौरव) हैं।

मुझे कहना पड़ा—आपके जबलपुर के नहीं, पूरे भारत के गौरव हैं।" □

कन्नड़ लोक साहित्य के अग्रणी समाहर्त्ता नाडीकेरिआंडा चिन्नप्पा

डॉ. वीरेंद्र शर्मा

कन्नड़ लोक-साहित्य में नाडीकेरिआंडा चिन्नप्पा का महत्वपूर्ण स्थान हैं। इन्होंने लोक साहित्य के लिए पर्याप्त परिश्रम एव चिंतन से कार्य किया है। परंतु इनके रचना कर्म पर जो चर्चा होनी चाहिए थी वो नहीं हो सकी। तुर्केमेनिस्तान से वहां के भारतीय राजदूत डॉ. वीरेंद्र शर्मा द्वारा प्रेषित लेख हमारे ज्ञान का सार्थक विकास करता है।

किसी भी राष्ट्र की अंतरात्मा, उसका आक्यन्तरिक गौरव एवं उसका मूलभूत सामूहिक जीवन-दर्शन एवं चिंतन-मनन उसका समग्र विचार-मंथन उसके लोक साहित्य मे निहित रहता है। उसकी राष्ट्रीय चेतना एवं उसकी सामाजिक, सांस्कृतिक तथा पारपरिक परिपाटियों की झांकी भी लोक साहित्य मे समाहित रहती है। भारतीय वाङ्मय के समान ही भारत का लोक साहित्य अत्यंत समृद्ध और प्राचीन है।

भारत के विभिन्न जनपदों की प्रथाएं, रीति-रिवाज, पर्व, उत्सव, लोकाचार, लोक विश्वास, लोकोक्तियां, आदि हिंदी एवं अन्य प्रादेशिक भाषाओं एवं बोलियों के विपुल भंडार में भलीभांति सुरक्षित हैं। इस लोक साहित्य का अतिशय महत्वपूर्ण एव मूल्यवान कलेवर अभी भी पूर्ण रूपेण लिपिबद्ध न होकर यत्र तत्र बिखरा पडा है जो मौखिक वाचन परंपरा के माध्यम से समाज को पीढ़ी-दर-पीढ़ी उपलब्ध होता रहता है। इस परिप्रेक्ष्य में कन्नड लोकसाहित्य के अग्रणी समाहर्त्ता के रूप मे नाडीकेरिआंडा चिन्नप्पा का नाम विशेष रूप मे उल्लेखनीय है। कर्नाटक प्रदेश के अन्तर्गत कोडगु अथवा कुर्ग एक अत्यन्त रमणीय क्षेत्र है। प्रदेश का सबसे छोटा जिला कुर्ग अत्यन्त हरा-भरा है जहां घने जगल हैं और उपजाऊ

घाटियां हैं। चारों ओर पश्चिमी घाट के सुंदर दृश्य हैं और मनमोहक पर्वत श्रृंखलाएं हैं। प्रकृति संपदा से संपन्न इस क्षेत्र में धान की खेती होती है। कॉफी, इलायची, कालीमिर्च, संतरे आदि यहां की समृद्धि के सहज द्योतक हैं।

यहां की मूलभूत संस्कृति का स्वरूप अभी भी ग्राम्य, अकृत्रिम एवं सहज है क्योंकि यह क्षेत्र तथाकथित नागर संस्कृति से अप्रभावित है। आत्मीयता से परिपूर्ण समाज में लोक साहित्य भी समृद्ध, लोकप्रिय एवं जीवंत है। यह लोक साहित्य इस समाज का प्राण है।

बीसवीं शती के प्रारंभ में कृषि प्रधान, बाह्य प्रभावों से अप्रभावित, अकृत्रिम इस क्षेत्र में एक पुलिस अधिकारी ने कोडव लोकसाहित्य के समाहरण, संपादन और प्रकाशन का बीड़ा उठाया। उन्होंने इस विपुल साहित्य संपदा को क्रमिक रूप में वर्गीकृत करने का संकल्प किया जिसमें जीवन-यापन की शैली, सामाजिक प्रथाएं, त्यौहार, लोकगीत, लोक कथाएं आदि परिव्याप्त थीं। नाड़ीकेरिआंडा चिन्नप्पा नामक इस पुलिस कार्यकर्ता ने अपने कर्त्तव्य निष्पादन के सिलसिले में पूरे कुर्ग क्षेत्र (60 मील × 40 मील) का घोड़े पर दौरा किया था। उन्होंने अनुभव किया कि धीरे-धीरे यह समृद्ध लोक साहित्य विलुप्त होता जा रहा है। जन्म, विवाह आदि के अवसरों पर गाये जाने वाले लोक गीतों, लोक कथाओं, लोकवार्ताओं को एकत्रित करने की परम आवश्यकता है क्योंकि यह बहुमूल्य राष्ट्रीय धरोहर यदि पूर्ण रूप से विलुप्त हो गई तो यह अपार अपूरणनीय साहित्यिक क्षति होगी। अत्यंत निष्ठा, समर्पण भावना एवं अथक परिश्रम से—एक मिशनरी भावना से, उन्होंने यह सामग्री एकत्रित करना प्रारंभ की। यह सामग्री *कोडन बोली* में थी जिसकी लिपि कन्नड है। उन्होंने पूरी की पूरी सामग्री कन्नड़ में लिपिबद्ध की। उन्होंने इसका शीर्षक रखा—*पट्टोला पलामे* यह सन् 1924 में प्रकाशित हुई। इसके बाद उन्होंने श्रीमदभगवद्गीता को *कोडव* में कन्नड़ लिपिबद्ध कर अनूदित किया। यह अनुवाद सन् 1929 में *भागवतान्डा पाट* शीर्षक से प्रकाशित हुआ। उन्होंने कन्नड़ और अंग्रेजी में कविताएं भी लिखीं। उन्होंने अपनी कोडव लोक साहित्य की पुस्तक *पट्टोला पलामे* का, उसे अधिक लोकप्रिय और व्यापक बनाने की दृष्टि से, अंग्रेजी में अनुवाद करना भी शुरू कर दिया किंतु दुर्भाग्यवश वे यह कार्य पूरा नहीं कर पाए। क्योंकि केवल 56 वर्ष की अवस्था में ही उनका देहावसान हो गया।

श्री चिन्नप्पा का जन्म सन् 1875 में हुआ था। उनका परिवार कृषि कार्य में लगा हुआ था। अपनी प्रारंभिक शिक्षा स्थानीय विद्यालय में पूरी करने के पश्चात् वे उच्च शिक्षा के लिए लगभग 60 मील दूर स्थित मंगलौर के एक कॉलेज में चले गए। इंटरमीडिएट परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् वे कुर्ग लौट आए।

उन्होंने एक अध्यापक के रूप में कार्य करना प्रारंभ कर दिया। इसके पश्चात स्वल्प काल के लिए उन्होंने राजस्व विभाग तथा सेना में भी नौकरी की। इन सबके बाद वह पुलिस में भर्ती हो गए। जहां वैल्लोर पुलिस संस्थान में प्रशिक्षण के उपरांत उनकी नियुक्ति एक

सब इन्सपेक्टर के रूप में हो गई। वे क्रिकेट के अच्छे खिलाड़ी थे। कुर्ग में उन्होंने पुलिस कर्मचारियों की सुविधा-सेवा के लिए पहली सहकारी समिति की स्थापना की। अपनी कर्त्तव्य निष्ठा के साथ समाज सेवा, समाज कल्याण तथा साहित्यिक साधना के लिए वे सदा तत्पर रहते थे।

यह परम संतोष का विषय है कि कोडव लोकसाहित्य पर श्री चिन्नप्पा का ग्रन्थ मैसूर विश्वविद्यालय ने सन् 1975 ई. में पुनः प्रकाशित किया। यह सामग्री विश्वविद्यालय के समाजशास्त्र पाठ्य क्रम में सम्मिलित की गई है जिससे विद्यार्थी और शोध कार्य में लगे अनेक विद्वान उससे लाभान्वित हो रहे हैं। प्रसिद्ध समाज शास्त्री श्री एम. एन. श्रीनिवास ने अपनी पुस्तक *रिलीजन एंड सोसाइटी एमोंग द कुर्गज ऑव साउथ इंडिया* के लिए इसका संदर्भ ग्रंथ के रूप में उपयोग किया है।

पट्टोला पलामे में 515 पृष्ठ हैं और इसमें निम्नलिखित परिच्छेद हैं–

1. कुर्ग का संक्षिप्त विवरण और इतिहास
2. कोडव रीति रिवाज
3. त्यौहार
4. देवताओं के गीत
5. प्रसिद्ध सेनानियों के गीत
6. विविध (लोकोक्तियां, मुहावरे, पहेलियां)

भावनात्मक एकता तथा साहित्यिक समन्वय एवं भारतीय लोक साहित्य को राष्ट्रीय स्तर पर अधिक समृद्ध लोकप्रिय एवं संघटित करने की दृष्टि से यह आवश्यक है कि *पट्टोला पलामे* का हिंदी तथा अन्य भाषाओं में अनुवाद किया जाय। श्री चिन्नपा के साहित्यिक योगदान का सम्यक् आकलन करते हुए तुलनात्मक दृष्टि से उनके कार्य की समीक्षा की जाए। इस संबंध में यह बात सदैव स्मरणीय है कि विभिन्न भाषाओं में उपलब्ध भारतीय साहित्य के मूल में आत्मा और स्वर एक ही हैं। उसमें *विविधता में एकता* की भावना सुस्पष्ट है।

☐

गहरे अर्न्तसंघर्षों के असाधारण कवि : श्रीकांत वर्मा

जोगेंद्र सिंह

आधुनिक कविता में श्रीकांत वर्मा की कविताओं की अपनी अलग पहचान है। इस संवेदनशील कवि ने राजनीति के दंश को भी भोगा है तथा अपनी रचनाओं में उसे अभिव्यक्त भी किया है। 'मगध' 'जलसाधर' 'माया दर्पण' 'गरुड़ किसने देखा है' आदि कविता संग्रहों के बीच से गुजरते हुए जोगेंद्र सिंह उनकी कवि संवेदना की पहचान से परिचित कराते हैं। जोगेंद्र सिंह ने इधर 'भारतीय भाषाओं के हिंदीतर भाषी कवियों" का काव्य संकलन संपादित किया है।

श्रीकांत वर्मा की शुरू की कविताओं से उनको अस्वीकार और असंतुलन के कवि के रूप मे जाना जाता है, उनकी आरंभ की कविताओं का मुख्य स्वर नाराजी, खीझ और अपने परिवेश के प्रति गुस्से और गहरे अंर्तसंघर्षों व व्यंग्य की अभिव्यक्ति है। परंतु जैसे-जैसे उनकी कविताओं की विकास यात्रा पर दृष्टि पार करते हैं तो वे इस दुनियां, इस शताब्दी की भयावहता, विद्रुपता, युद्ध की विभीषिका, आतंक, छटपटाहट, व मनुष्य की नियति का उनकी कविताओं में तीखी और सफल अभिव्यक्त हुई है।

श्रीकांत जी का पहला काव्य संग्रह "*भटका मेघ*" निकला जिसमे उनकी देहाती जिंदगी और ग्रामीण समाज के प्रति गहरा लगाव और परिवेश के प्रति गहरी आस्था दिखाई देती है। सारे संग्रह की कविताओं मे पीपल, गुलाब, खंडहर, नदी, पहाड़, सावन, पुरवाई, क्षिप्रा के तट, आषाड़ी संध्या आदि के चित्र विद्यमान हैं। तुलसी का चौरा, वांसों का झुरमुट, सरसों का खेत, महुए के फूल व ग्रामीण शब्दावली की बहुलता है, उनके इस संग्रह का जो ग्रामीण और कस्बाई परिवेश है वह बाद के संग्रहों में महानगरीय हो गया है। विलासपुर और छत्तीसगढ़ के अंचल से रचनात्मक स्तर पर गहरे जुड़े से लगते हैं। इस संग्रह की कविताओं में उनका रोमानी अंदाज भी दिखाई पड़ता है।

"दिनारम्भ" की कविताएं प्रायः छोटी-छोटी कविताएं हैं। उसमें मन पर प्रभाव डालने की क्षमता है। उन कविताओं में ऐच्छिकता और चित्रात्मकता है।

दीख नहीं पड़ते अश्वारोही लेकिन
सुन पड़ती है टाप,
झेल रहा हूं थाप

—प्रतीक्षा

श्रीकांत जी का काव्य संग्रह मगध उनके दूसरे काव्य संग्रहों से भिन्न है। इसमे गंभीर मनन और चिंतन की दार्शनिक मनोभूमि है। इस संग्रह की कविताओं मे गहरा व्यग्य एवं क्रांति नहीं अपितु शांति की तलाश है। इस संग्रह में अतीत को गहरे कौतूहल और प्रेरक के रूप में कवि महसूस करता है और नश्वर की पड़ताल करता सा लगता है। कुछ कविताएं अत्यंत व्यंग्य प्रधान हैं। जैसे—

मगध अब कहने को मगध है
रहने को नहीं
कोई टोकता तक नहीं
इस डर से
कि मगध में
टोकने का रिवाज न बन जाए

— "हस्तक्षेप"

उनकी कविता "हस्तिनापुर का रिवाज"

मैं फिर कहता हूं
धर्म नहीं रहेगा तो
कुछ नहीं रहेगा
मगर मेरी, कोई नहीं सुनता
हस्तिनापुर में सुनने का रिवाज नहीं
जो सुनते हैं
बहरे हैं / या अनसुनी के लिए
नियुक्त किये गये हैं।

इस संग्रह की कविता *"मित्रों से सवाल"*

मित्रो
यह कहने का कोई मतलब नहीं कि
मैं समय के साथ चल रहा हूं
सवाल यह है कि समय तुम्हें बदल रहा है
या तुम समय को बदल रहे हो
मित्रो / यह कहना कोई अर्थ नहीं रखता
कि मैं घर जा पहुंचा
सवाल यह है
इसके बाद कहां जाओगे।

—मगध से

काल, चुनौती की तरह कवि के सामने खड़ा है। ये उनके भावजगत और आग्रहों के परिचालक हैं।

"जलसा घर" और *"माया दर्पण"* संग्रहों की कविताएं बीसवीं शताब्दी की भयावहता और बर्बरता की अभिव्यक्ति करती हैं। *"जलसाघर"* की कविताएं युद्ध की विभिषिका की छाया आतंक, बौने मानवीय अस्तित्व की प्रस्तुति करती हैं। युद्ध, शांति, अन्याय और न्याय पूरे संग्रह मे व्याप्त हैं। हत्या, लूटपाट, बलात्कार, मोहमंत्र, गुस्सा, विद्रोह, घृणा और छटपटाहट इस संग्रह की विशेषता है। उदाहरण के लिए—

जब सब कह रहे थे
मुंह मत खोलो
मैं कह रहा था
मुंह मत खोलो
बोलो / जैसा सब बोलते हैं।

—"जलसाघर से"

अशोक *"जलसाघर"* का वह आदमी है जो अकेला है जिसने हथियार रख दिए हैं। बीसवीं शताब्दी की भयावहता, विश्व की विद्रूपता, अफ्रीका, चेकोस्लोवाकिया, वियतनाम, अमेरिका, चीन, हिरोशिमा, पेरिस, यूनान, समरकंद, लेनिन, लिंकन आदि इन कविताओं में आते हैं। कवि राष्ट्रीय स्तर से अंतर्राष्टरीय धरातल पर विचार करता है और काव्य जगत को व्यापक और मानवीय संदर्भ देता है जिसमें उनकी विश्वसनीय निवेदना का विस्तार है।

माया दर्पण की अनेक कविताओं में *"छटपटाहट"* और अमानवीय बर्बरता की गाथा ही विद्यमान है।

काले पहाड़ को बांध कर भुजा पर
चला आ रहा है यह आसमान
दर्रे-दर्रे में किसी के न आने की छाप है
मेरी कविता में शोक है संताप है

—*"माया दर्पण"*

माया दर्पण की एक कविता में कवि ने मानवीय अस्तित्व का सफल चित्रण किया है—

मैं महुए के वन में
एक कण्डे सा
सुलगना, गुणवाना
धुधुवाना चाहता हूं
मैं अब घर जाना चाहता हूं

- *माया दर्पण*

गरूड़ किसने देखा है श्रीकांत जी का छटा काव्यसंग्रह है। जो उनके निधन के बाद प्रकाशित हुआ। काव्य यात्रा मे यहां तक आते आते वे अनुभव लोक की नयी भावभूमियों में पहुंच जाते हैं। पिछले संग्रहों से नितात भिन्न बीसवी शताब्दी के मानव की पीड़ा, वर्तमान की कड़वाहट तड़पन, मृत्यु से लड़ते हुए कवि की ये पंक्तिया कवि की मन दशा की अभिव्यक्ति करता है।

गिद्धराज आओ
गरूड़ अगर था भी तो वापस नही आयेगा
गरूड़ कभी था ही नहीं
गिद्ध था
जिन्होंने गिद्ध नहीं देखा
उन्हीं के सपनों मे
गरूड़ मड़लाता है
मंडलाने दो
गिद्धराज आओ
गरूड़ किसने देखा है—

- —*"गरूड़"*

उन्होंने साहित्य की हर विद्या में लिखा। कविता संग्रहों के अतिरिक्त उनके कहानी संग्रह झाड़ी, गिरह (आलोचना), दूसरी वार (उपन्यास), अपोलो का रथ (यात्रा) और बीसवीं सदी के अंधेरे मे (वार्तालाप)।

उनकी हर संग्रह की रचनाएं नई जमीन ओर नई अभिव्यक्ति को लेकर उपस्थित होती हैं। उनके हर संग्रह में खिन्नता लगती है। वे उन अत्यंत संवेदनशील कवियों में थे जिनके लिए यह शताब्दी चिंता का विषय थी।

वे लगभग 25 वर्षों तक दिल्ली में रहे और यहां उन्होंने अधिकांश साहित्य सृजन किया परंतु वे दिल्ली की बनावटी माया की दुनियां को आत्मसात नहीं कर पाए। राजनीति में आने के बाद वे उदास, खिन्न और बोझिल जिंदगी जीते रहे। दिल्ली की राजनीति, और क्रूरता से अपना अकेलापन उनकी रचनाओं में अनेक जगह मौजूद है।

वे अपने समय के अत्यंत समर्थ, जीवंत और गहरे अंर्तसंघर्षों के असाधारण कवि थे, उनकी अनुपस्थिति में उनका साहित्य प्रेरणादायी है। विशेषरूप से नव-लेखकों के लिए।

□

समीक्षा

संवेदनशील कवि-हृदय की कहानियां

प्रेम जनमेजय

आधुनिकता ने हमारे जीवन की भौतिक गति को जितना तीव्र किया है, उतना ही हमारे मानवीय संबंधों को भोथरा कर दिया है। एक अजब तरह का मानसिक बवंडर, सही सोच और संवेदनशील चिंतन से युक्त व्यक्ति को घेरे हुए है। अनेक प्रश्नचिह्न मानवीय सभ्यता के भविष्य को लेकर उठ खड़े हुए है। मानवीय मूल्यों की दृष्टि से आज का वर्तमान इतना खंडित लगता है कि भयावह भविष्य आतंकित करने लगता है। ऐसे मे या तो व्यक्ति अवसाद, निराशा आदि मे घिरकर पलायनवादी मार्ग अपना ले या फिर अपनी संघर्षशील चेतना के बल पर इनसे लड़े। अपने नये कहानी संग्रह "*तपोवन मे बवंडर*" मे शीला गुजराल कुछ ऐसे ही सवालों से जूझती हुई दृष्टिगत होती हैं। लेखिका आज के वर्तमान से खिन्न अवश्य हैं परंतु उसकी संघर्षशील चेतना एक आस्था के साथ इनसे जूझती हुई दिखाई देती है। इन कहानियों मे वर्तमान की भयावहता के चित्रण के साथ इनसे घबराने का भाव नही है, अपितु उन पर विजय का विश्वास है।

शीला गुजराल की इन कहानियों की अंतश्चेतना दो विभिन्न जीवन मूल्यों के बीच संघर्ष की है। एक ओर धन के दंभ में पलता हुआ वह जीवन है जहां अर्थ अधिक महत्वपूर्ण हो चुका है और मानवीय संवेदनाएं, भावनात्मक लगाव एवं आपसी संबंधो की मधुरता कोने में पड़ी सुबक रही है। "*जूठे आम*" की मिसेज दारूवाला, "*तपोवन मे बवंडर*" के मोहन राधा और कृष्णा, "*विश्वासघाती कौन*" के मालिक आदि एक ही चेहरे के अनेक रूप है जो अपने स्वार्थी चरित्र के कारण मानवीय संवेदनाओं से दूर है। जिन लोगो के पास भौतिक सुविधाएं है वो भावनात्मक शोषण का ऐसा षड्यंत्र रच रहे है कि आर्थिक दृष्टि से विपन्न व्यक्ति इनके जाल से निकल नहीं पा रहा है। शीला गुजराल की आस्था ऐसे ही लोगो के प्रति है। उनका मानना है कि समाज में चाहे कितनी विकृति आ जाए परन्तु ये वर्ग हमारे मानवीय मूल्यों को जीवित रखने में सक्षम हैं।

आजकल जो जितना आर्थिक दृष्टि से संपन्न है, उतना ही संवेदनात्मक दृष्टि से

शून्य है। परंतु ऐसे लोग अंदर से बहुत खोखले और डरे हुए भी हैं। *"विश्वासघाती कौन"* का मालिक एक संपन्न एवं धनिक व्यक्ति है। उसका सिद्धांत है कि गला भी काटो तो मीठी छुरी से और आर्थिक दृष्टि से विपन्न लोगों को अपना गुलाम बनाए रहो। जो इनकी इच्छा के विपरीत जाता है , उसका प्राण हरने में भी इनको हिचक नहीं होती है। राधेश्याम ऐसे लोगों की नस-नस पहचानता है। परंतु बेचारा माधव इस गुलामी के जाल में फंसा, ये सब बातें राधेश्याम से सुनने के बावजूद जो सिद्धांत रखता है कि उसने मालिक का नमक खाया है। माधव को अपनी शादी के लिए छुट्टी चाहिए। जिंदगी भर की सेवा का परिणाम उसे मालिक की गालियों के रूप में मिलता है। तब राधेश्याम ऐसे लोगों की कमजोरी को.उन पर ही इस्तेमाल करने के लिए माधव को उकसाता है। माधव उसकी बात मान जाता है परंतु अंत तक उसे पछतावा रहता है कि उसने मालिक के साथ विश्वासघात किया है। परंतु लेखिका का प्रश्न है कि विश्वासघात किसने किया है—मालिक ने भावनात्मक शोषण करके अथवा अपना अधिकार पाने के लिए माधव ने झूठ बोलकर। निश्चित रूप से लेखिका की अंगुली मालिक की ओर ही उठती है।

शीला गुजराल की कहानियों का स्वर हमें संवेदनशील, भावुक, ममत्व एवं करूणा से भरपूर परिवेश की ओर ले जाता है। उनका मानना है कि ये सारे गुण साधन संपन्न समाज से विलीन होते जा रहे हैं और आर्थिक अभावों से पीड़ित सामाजिक वर्गों में जिंदा हैं। यही कारण है कि लेखिका अपने साथ बहाकर ले जाती है और हमारी सहानुभूति ऐसे वर्ग के साथ जुड़ जाती है। कई बार तो ऐसा लगता है कि लेखिका की यह एक भूख है जो अनेक रूपों में अभिव्यक्त हुई है। लेखिका का संवेदनशील कवि हृदय जैसे इस बनावटी परिवेश में आहत होकर अपनी करूणा कागजों में बिखेर रहा है। लगभग सभी कहानियों का अंत पाठक को अंदर ही अंदर भिगो जाता है।

इन कहानियों की भाषा में एक सहज प्रवाह है जो पाठक को अपने साथ बांध लेता है। परंतु ये कहानियां बहुत जल्दी समाप्त हो जाती हैं। कुछ कहानियों को एक बड़े कैनवास पर लेखिका ने शुरु किया है परंतु बहुत जल्दी अंत तक ले गयी हैं। *"प्रतिकार"* *"सतह पर तिरती"* जैसी अनेक कहानियां हैं जिनमें विस्तार की गुंजाइश है। ऐसा लगता है जैसे बात शुरू हो रही है परंतु बहुत जल्दी खत्म भी हो जाती है। *"जूठे आम"* कहानी की विषय वस्तु एक उपन्यास की मांग करती है। विदेशी दूतावासों में भारतीय दूतावास अधिकारियों के साथ गई कामवालियों के शोषण, उनकी मानसिकता, उनके अकेलेपन आदि को एक बड़े कलंक पर उठाया जा सकता है। इस विषय पर बहुत कम लिखा गया है। शीला गुजराल ने इस पक्ष को बस छुआ भर है।

कुल मिलाकर इस संग्रह की कहानियां निराशा से आशा की ओर ले जाती हैं। इनमें

संवेदनशील कवि हृदय की आस्था है। समाज में जो गलत घट रहा है, उसका विरोध तो है ही साथ ही ऐसे पात्रों की पहचान भी है जो शाश्वत जीवन मूल्यों को बनाए रखने के लिए संघर्ष कर रहे हैं। □

तपोवन में बवंडर / लेखिका : शीला गुजराल / प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ, 18, इंस्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली-110003 / मूल्य : साठ रुपए

सामाजिक क्रांति के जनक : महात्मा जोतिबा फुले

राधेश्याम तिवारी

डॉ. मु.ब. शाह द्वारा लिखित महात्मा जोतिबा फुले के जीवन चरित्र को पढ़कर कवि स्व. रामधारी सिंह "दिनकर" की कुछ पंक्तियां याद आती हैं, जिसमें उन्होंने लिखा है कि—"हम मूर्ति इसलिए नहीं पूजते कि उसमें देवता बसता है, बल्कि इसलिए पूजते हैं कि उसने तराशे जाने का दर्द सहा है।" जब कोई बड़ा समाज सुधारक पुरानी सड़ी-गली मान्यताओं की जगह नए मूल्यों की पुनर्स्थापना करता है, तो उसे भी अनेक दर्द सहने होते हैं, कई बार इस क्रम मे उसे टूटना भी पड़ता है, लेकिन उसका टूटना भी उस धनुष की तरह है, जिसके टूटने से अनेक संस्कृतियां आपस में जुड़ती हैं।

महात्मा जोतिबा फुले उन्हीं समाज सुधारकों में एक थे, जिन्हें तथाकथित छोटी जाति का होने के कारण उपेक्षा और अपमान का शिकार होना पड़ा फिर भी विसंगतियां उन्हें लक्ष्य मे विचलित न कर सकीं और अंततः वह ब्राह्मण समाज, जो वर्णव्यवस्था के चौथे नंबर के व्यक्ति को आदमी नहीं समझता था, यह स्वीकार किया कि ज्ञान और प्रतिभा किसी खास वर्ग विशेष की चेरी नहीं हुआ करती।

स्वातंत्र्योत्तर भारत की सामंती व्यवस्था भारतीय इतिहास का एक काला धब्बा था, यूं कहें कि ग्रहण था, जिसने अनेक सूर्यों को ग्रसा लेकिन समय अपना सारथी लेकर आता है। 19वीं सदी में महाराष्ट्र के सबसे निर्भीक, सच्चा समाज सुधारक जोतिबा फुले का जन्म महाराष्ट्र के जिस संत परंपरा में हुआ उसका नाम—सावता माली है।

लेखक ने जोतिबा फुले के पूर्वजों की चर्चा करते हुए लिखा है—"जोतिबा के दादा थे शेटीबा। शेटीबा के तीन पुत्र हुए। राणोजी, कृष्ण और गोविंद। अपना गांव छोड़कर जब वे खानवड़ी मे आए, तब उनकी माली हालत ठीक नहीं थी। चारों ओर अभावों का घेरा था। लेकिन उससे जूझने का साहस भी था। शेटीबा के तीनों पुत्रों ने तनतोड़ मेहनत की। फुलवारी सजाने संवारने का काम सीखा। धीरे-धीरे उनकी कीर्ति पेशवाओं तक पहुंच गयी। उन्हें पेशवाओं की फुलवारी में काम मिला। काम वे इतने बढ़िया ढंग से करते थे कि प्रसन्न होकर पेशवाओं ने उन्हे पैंतीस एकड़ जमीन इनाम में दे दी। अब लोग उन्हें "फुले" कहने

लगे। पहला नाम गोरहे काल के उदर में समा गया।

बाद में गोविंदराव का विवाह धनकवड़ी गांव के झगड़े पाटील की बेटी विमलाबाई से हुआ। विमलाबाई के दो पुत्र हुए—राजाराम और जोतिबा।

जब जोतिबा एक वर्ष के हुए तभी उनकी मां का प्राणान्त हो गया। जो औरत उन्हे पाली थी, उसका नाम सगुणाबाई था। सगुणाबाई से महात्मा फुले इतने प्रभावित थे कि जीवनभर उन्हें कभी भी भूल नहीं पाए। जोतिबा ने एक बार सगुणाबाई को लिखा था कि—''दूसरों के बच्चों से कैसा स्नेह करें ये मैंने आपसे सीखा है।''

जिस समय महात्मा फुले का जन्म हुआ था, उस समय महाराष्ट्र की सामाजिक स्थिति का चित्रण करते हुए लेखक ने एक जगह लिखा है कि—''पेशवाओं के अधिकारों की समाप्ति हो गई लेकिन धर्म के क्षेत्र में उन्हें जगह मिल गई ... उसके दुराचार की कहानियां किसी भी मुगल अत्याचारी बादशाह से कम नहीं था। स्त्रियों के बेलगाम व्यवहार को पेशवाओं की शह होती थी।

लेखक ने धर्म के नाम पर हो रहे महिलाओं के दैहिक शोषण का जैसा चित्रण किया है, इससे बरबस ही तीसरी, चौथी ई.पू. की मिश्री और बाबुली पुरोहितिनियों की याद ताजी हो जाती है जिसमें उन्हें देवताओं के भोग का साधन बनना पड़ता था। बाबुल के मिलित्ता देवी के मंदिर में वेश्यावृत्ति का वैधानिक प्रचलन था। ग्रीक इतिहासकार हेरोदोस लिखता है कि—''बाबुल की प्रत्येक स्त्री को, जो उस देश की नागरिका थीं जीवन मे एक बार अनिवार्यतः मिलित्ता के मंदिर में जाकर अजनबी से रमण करना पड़ता था, शुद्ध वेश्या के रूप में।''

जोतिबा ने तत्कालीन समाज में व्याप्त इन कुरीतियों को दूर करने का सकल्प लिया और कहा कि जब तक स्त्रियों एवं पिछड़ी हुई जातियों को आगे नहीं बढ़ाएंगे, तब तक समाज में व्याप्त अंधविश्वास और अन्याय की कड़ियां नहीं टूटेंगी।

चूंकि महाराष्ट्र में सवर्णों द्वारा छोटी जाति के बच्चों को पढ़ने मे रोका जाता था। स्वयं महात्मा फुले को सवर्ण समाज के दबाव में आकर बचपन मे स्कूल जाने मे रोका गया। कालान्तर में उन्होंने गंभीर संघर्ष किया और यह महसूस किया कि जब तक शिक्षा का विकास नहीं होगा, विसमता की यह खाई नहीं मिटेगी। अपने इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने पूना के बुधवार पेठ में सन् 1848 के अगस्त मे अछूत बच्चों के लिए स्कूल शुरू किया, जो महाराष्ट्र में ही नहीं, पूरे देश में अपने ढग का पहला स्कूल था।

3 जुलाई, 1857 में उन्होंने बुधवार पेठ में रहने वाले अण्णा साहब चिपलूणकर के विशाल भवन में केवल लड़कियों के लिए एक स्कूल खोला। जोतिबा पहले भारतीय समाज सुधारक थे जिन्होंने स्वतंत्र रूप से लड़कियों के स्कूल की आवश्यकता महसूस की।

महात्मा फुले पर थामस पेन के एकेश्वरवादी दर्शन का गहरा प्रभाव था। अमेरिकी

दार्शनिक थामस पेन। उसने जिस हिम्मत से तत्कालीन क्रिश्चियन धर्म की बुराइयों पर प्रहार किया कुछ उसी तरह महात्मा फुले भी पारंपरिक जाति व्यवस्था पर भारत में प्रहार किया।

यह एक सच्चाई है कि जो जितनी बड़ी हस्ती होती है, उसे उसी अनुपात में गरल पान भी करना होता है। जिस तरह थामस पेन को अनेक यंत्रणाएं राज्य सत्ता की ओर से सहना पड़ा, फुले को भी उसी तरह सहना पड़ा विसंगतियों का संत्रास लेकिन अपने उद्देश्य की ओर सतत बढ़ते हुए महात्मा फुले ने यह सिद्ध कर दिया कि विचारों की आग को तलवारों से कभी समाप्त नहीं किया जा सकता।

वैसे दास प्रथा लगभग पूरी दुनिया में रहा। लेकिन कुछ पाश्चात्य दार्शनिकों ने इसे वैधता की स्वीकृति भी दे दी। यूनानी दार्शनिक प्लेटो और अरस्तु तक ने दास प्रथा संबंधी अपने विचारों में कहा कि यह प्रकृति का नियम है कि निर्बलों पर सबल शासन करेंगे। हालांकि विद्वानों ने उसकी कटु आलोचना भी की। आज जबकि दुनिया में लोकतंत्र एक युग धर्म हो चुका है, प्लेटो और अरस्तु के दासता संबंधी विचार को हिकारत भरी नजरों से पढ़ते हैं।

भारत में सबसे पहले दास प्रथा का विरोध महात्मा फुले ने किया था। उन्होंने कहा कि एक आदमी दूसरे आदमी को जानवरों की तरह खरीदे और बेचे कहां का न्याय है। हालांकि इस प्रथा के लिए भी महात्मा फुले ब्राह्मणी व्यवस्था को ही दोषी मानते थे। लेखक ने लिखा है—"जोतिबा की दृष्टि में सामाजिक विषमता का मुख्य कारण एक ही था—ब्राह्मणों का धर्म। वह केवल विषम समाज रचना का निर्माता ही नहीं था, वह उस विषमता को चिरंजीव रखने की कोशिश करने वाली "साजिश" भी थी। उसके कारण शूद्रातिशूद्रों को और स्त्रियों को जीना तक मुश्किल हो गया। उसने लगभग सारे समाज पर एक ऐसी वैचारिक गुलामी लादी, जिसने व्यक्ति की स्वतंत्रता और सोच कुंद कर दिए थे।"

पुस्तक मे लेखक ने महात्मा फुले के संबंध में जो जानकारियां दी हैं—निश्चय ही महात्मा फुले को जानने में सहायक सिद्ध होगा। इस तरह की जीवनियों से एक बड़ा लाभ यह होता है कि आम लोग उस संबंधित महापुरुष के संघर्षों से तो परिचित होते ही हैं, तात्कालीन समाज-व्यवस्था से भी रु-ब-रु होते हैं।

पुस्तक की भाषा सरल एवं सुपाठय है। पुस्तक में एक चीज का अभाव खटकता है, जो बहुत ही महत्वपूर्ण है, महात्मा फुले की निश्चित जन्म-तिथि का उल्लेख नहीं है। एक जीवनीकार को इन छोटी-छोटी किंतु महत्वपूर्ण बातों को नजरअंदाज नहीं करना चाहिए। □

भारतीय क्रांति के जनक महात्मा फुले / डॉ. मु.ब. शाह / प्रकाशक. राधाकृष्ण प्रकाशन, अंसारी रोड, नई दिल्ली-110002 / मूल्य: 65 रुपए

हिंदी सिनेमा पर सार्थक चिंतन

अजय गिरि

सिनेमा एक कला है। कला समाज में उत्पन्न होकर गहरे तक समाज को प्रभावित करती है। आज के युग ने जिस तरह हमारे समाज को प्रभावित किया है, उसको अब नकारना या गंभीरता से न लेना हमारी भारी भूल होगी क्योंकि जिस प्रकार साहित्य समाज का दर्पण है, उसी प्रकार सिनेमा में भी हमारे समाज का सच्चा प्रतिबिंब है। लेखक ने इस पुस्तक को समर्पित ही उन लोगों को किया है, जो सिनेमा नामक कला-व्यवसाय को गंभीरता से लेते हैं। यह खुशी की बात है कि विजय अग्रवाल ने *"सिनेमा और समाज"* मे इस कला के हर पक्ष पर तर्कसंगत ढंग से एक सार्थक जानकारी उपलब्ध कराने की कोशिश की है।

यह बात सही है कि आज विश्व ने सिनेमा के महत्व को समझा है। भारत मे यह एक उद्योग बन गया है। आज विश्व की सबसे ज्यादा फिल्में भी भारत में ही बन रही हैं। मगर सबसे दुखद बात यह है कि भारत में सिनेमा को आज भी गंभीरता से नहीं लिया जाता जबकि उसके बहुआयामी और सशक्त प्रभाव को सभी स्वीकार करने लगे हैं। बावजूद इसके आज तक हमारे समाज ने सिनेमा को वह प्रतिष्ठा नहीं दी है जिसका वह हकदार है। सही कारण है कि सिनेमा पर गंभीरता और सार्थक लेखन का भारत मे भयंकर अकाल है। इस कड़ी में विजय अग्रवाल ने एक गंभीर पहल करके कुछ आशा बधाई है।

लेखक ने एक छोटा-सा उदाहरण देकर सिनेमा के समाज पर प्रभाव का बड़ा सटीक उदाहरण दे डाला है। वह पढ़ाई छोड़ चुका है, मगर महमूद की एक फिल्म देखकर प्रेरणा प्राप्त करता है और अपनी पढ़ाई शुरू कर देता है। आगे चलकर वह (लेखक) बड़ा साहित्यकार बन जाता है। आज भी लाखों लोग फिल्मों से प्रेरणा लेते हैं। इससे यह साबित हो जाता है कि फिल्मों को अगर सही सोच और दिशा मिले तो वे हमारी समाज का काफी भला कर सकती हैं।

लेखक के इसी सोच ने उससे यह पुस्तक लिखवाई है। यह उसका एक श्लाघनीय प्रयास माना जाना चाहिए।

"सिनेमा और समाज" में अग्रवाल ने इस कला के व्यापक प्रभाव को देखते हुए विषय की आवश्यकता और अपनी तथा पाठको की सुविधा के लिए पुस्तक को कई शीर्षकों में बांटा है जो पुस्तक को ऊबाऊ नहीं होने देता। उसने शुरू से अंत तक अपनी बात को

रखने की सफल कोशिश की है।

हिंदी फिल्मों के समाजशास्त्र नामक शीर्षक में लेखक ने फिल्मों के स्वभाव में आए परिवर्तनों को समाज में बदलाव के साथ जोड़कर यह प्रमाणित करने का प्रयास किया है कि कैसे ये परिवर्तन आवश्यक थे। उसने मूक फिल्मों के दौर से लेकर आज के हिंसा और सैक्स प्रधान फिल्मों तक के सफर के समाजशास्त्र का बड़ा सटीक वर्णन किया है। फिल्मों के कथानक, संवाद, गीत और संगीत में जो बदलाव आया है, उसकी तेजी, तीक्ष्णता और लाउडनेस को वह समाज के दर्शन में परिवर्तन का परिणाम मानकर यह प्रमाणित करता है कि छठे दशक से लेकर आज तक की फिल्में सिर्फ एक मायने में नहीं बदली हैं और वह है एक खास वर्ग का पोषण।

सातवें दशक में आई फिल्में—*"बॉबी"*, *"शोले"* और *"जय संतोषी मां"* की सफलता के विषय में बात कहते हुए भी लेखक निर्माताओं और पाठकों को कोई सूत्र नहीं बता पाता। उसे समाज के मानसिकता से जोड़कर हाथ झाड़ लेता है।

वह कला फिल्मों की असफलता को एकमात्र कारण उनका यथार्थवादी दृष्टिकोण मानकर चलता है। बाद में वह कथानकों के तत्व निर्धारित करते हुए यह जतलाता है कि इससे हमारे समाज का अवश्य भला हो सकता है जिन्हें निर्माताओं को ध्यान रखना चाहिए। उसका मानना है कि अगर यथार्थ को कला और आदर्श की चाशनी में लपेटकर परोसा जाए तो वह सफल होगा क्योंकि हमारे समाज का प्रत्येक व्यक्ति उसको अपने बेहद नजदीक महसूस करेगा।

लेखक ने साहित्य और सिनेमा के संबंध शीर्षक से कुछ कटु सत्य का बड़ा मार्मिक उल्लेख किया जिसके कारण आज फिल्म और साहित्य में एक स्वस्थ और सुंदर संबंध स्थापित नहीं हो पाया है। उसने प्रेमचंद, भगवतीचरण वर्मा, फणीश्वर नाथ रेणु, उपेन्द्र नाथ अश्क तथा के. ए. अब्बास आदि का उदाहरण देकर साहित्य की गंभीरता और फिल्म की छिछली प्रतिबद्धता का जिक्र किया है। उसके उपरांत भी कई साहित्यकारों की रचनाओं पर फिल्में बनी मगर समझ को लेकर टकराव जारी रहा। उसने साहित्यकारों के फिल्मों में प्रवेश की जबर्दस्त वकालत की है। उसका कहना है कि दोनों के बीच एक आदर्श स्थिति बननी चाहिए और यह तभी संभव है जब या तो लेखक स्वयं निर्देशक हो अथवा निर्देशक स्वयं रचनाकार हो। लेकिन यह तो एक आदर्श स्थिति की बात है। महत्वपूर्ण और आवश्यक केवल इतना ही है कि निर्देशक लेखक की संवेदना हो ईमानदारी से पकड़े, उसे ग्रहण करे और फिर उसे पूरी संरचनात्मक ईमानदारी के साथ फिल्म का रूप दे।

वह साहित्य को सृजन मानता है जबकि फिल्म को पुनर्सृजन। इसके बीच के मूल और अहम बिंदुओं को समझकर ही फिल्मकार और साहित्यकार समाज के प्रति अपनी प्रतिबद्धता को निभा सकते हैं।

इसके आगे लेखक ने इतिहास के फिल्मांकन का विश्लेषण करते हुए कहता है कि फिल्मों में इतिहास का जो विश्लेषण हुआ है, वह यथार्थ से कोसों दूर है। वह इतिहास के यथार्थ के फिल्मांकन की वकालत करता है। उसका मानना है कि फिल्मों मे इतिहास के मूल तथ्य को भ्रष्ट कर दिया जाता है। इसके लिए आवश्यक है कि इतिहासकार भी इस क्षेत्र में आएं।

सिनेमा और समाज पुस्तक में विजय अग्रवाल ने कुछ फिल्मों का उदाहरण देते हुए यह बताने की चेष्टा की है कि साधारणीकरण ही फिल्मों की सफलता का मूल है। उसने कुछ ऐसी फिल्मों की चर्चा की है जिनमे नीतिगत बोझिलता के साथ-साथ सफलता के भी तत्व समावेश हैं। मगर वह यह बताने मे असफल रहा है कि इन फिल्मो में नीतिगत गभीरता होने के बावजूद ये सफल कैसे रहीं ... समाज की नब्ज की पकड़ की तो बात समझ मे आती है मगर साधारणीकरण और बोझिलता के बीच की कड़ी जुड़कर कैसे सफलता तक पहुंची, स्पष्ट नहीं हो पाता।

लेखक ने जगह-जगह पर सफल (यहां सफल से मतलब लेखक ने व्यवसायिक सफलता के रूप में आंका है) फिल्मों और फिल्मकारों का उल्लेख किया है। कुछ फिल्मकारो जैसे राज कपूर, गुरू दत्त, साहिर आदि पर विशेष कलम चलाकर भारतीय सिनेमा मे उनकी महत्ता और प्रबल .प्रतिबद्धता, चाहे वह व्यवहारिक ही क्यो न हो, की सार्थकता सिद्ध करने का प्रयास किया है।

चांदनी, मैंने प्यार किया, लम्हे, सलाम बाम्बे, आदि सफल फिल्मों की सफलता के ग्राफ को समझाने का प्रयत्न किया। हालांकि इस प्रयास मे कभी कभी वह अपनी व्यक्तिगत प्रतिबद्धता की वकालत करता भी नजर आता है। दूसरी ओर फिल्मी गीतों मे बदलते प्रेम की अभिव्यक्ति को बड़े ही शालीन और प्रभावी ढंग मे रखकर उनके कारणों की विवेचना की है। इस प्रयास में वह सफल रहा है। हालांकि स्वतंत्रता के बाद के फिल्मी गीतो पर जिस प्रभाव की चर्चा उसने नेहरू प्रभाव के रूप मे की है, वह नेहरू प्रभाव नहीं बल्कि भारत की स्वतंत्रता के बाल्यावस्था की स्वाभाविक क्रिया थी। इसके बावजूद उसने अपनी बात बड़े निर्दोष ढंग से रखी है।

यह पुस्तक सिनेमा पर एक अच्छी पुस्तक है जो समाज के प्रति उसकी प्रतिबद्धता, प्रभाव और आवश्यकता पर एक स्वस्थ सोच विकसित करने मे सहायक है। □

सिनेमा और समाज / लेखक : डॉ विजय अग्रवाल / प्रकाशक सत्साहित्य प्रकाशन दिल्ली /
मूल्य : साठ रुपए

'उसकी जमीन'—महानगर की प्रदक्षिणा

डॉ. मधुसूदन पाटिल

आधुनिक हिंदी कथाधारा ने एक लंबी यात्रा तय की है। अंततः वापसी के दौर में वह अपनी जमीन से जुड़ गई है। अनेक भटकाव और जोड़ घटाव के बाद हिंदी कहानी फिर अपनी सधी और सीधी राह पर चल पड़ी है। प्रेमचंद की कफन कहानी से सफर का सर्वेक्षण करें तो हम पाएंगे कि कहानी अनेक धाराओं-उपधाराओं में बहती हुई भी मानवीय संवेदनाओं की राह से नहीं भटकी।

नौवें दशक के आधुनिक दृष्टिसंपन्न लेखकों में से एक है—ज्ञान प्रकाश विवेक। *'उसकी जमीन'* उनका पांचवां कहानी संग्रह है। इसमें उनकी चौदह कहानियां संकलित हैं। ये कहानियां महानगर के किनारे बसे कस्बे से महानगर का दैनिक सफर तय करती हैं, लेकिन यह रिंग रोड की मुद्रिका सेवा नहीं है बल्कि भीतरी संवेदनाओं की धारावाहिक प्रदक्षिणा है। यह सफर टूटते मूल्यों का भी है और बदलती मानसिकता का भी। इसमें भावुकता से बौद्धिकता तक के दो छोरों को छूने वाली यात्रा है।

महानगर पर केंद्रित कहानियों में कहानीकार ने अपने समय और समाज के सच को संवेदित और संश्लेषित किया है। यह मानवीय संवेदना की अतीत वर्तमान और भविष्य की गतिशील यात्रा है। जीवन को बदलने वाली शक्तियां और उसे यथावत बनाए रखने वाली शक्तियों के बीच विकट संघर्ष यहां भी है। पैसा और जमीन का द्वन्द्व महानगर की सरहद पर बसे कस्बे का यथार्थ है। यहां की उपजाऊ जमीन कंक्रीट के जंगल में तब्दील होती जा रही है। और यहां की मानसिकता महानगर की मानसिकता में बदल रही है, चालाक और दूसरे को ठगने पर आमादा। ये कहानियां महानगरीय जीवन के भीतर पाए जाने वाले भीषण अंतर्विरोधों से साक्षात् कराती हैं। यहीं वे अपने समय और समाज का बोध कराती हैं।

ज्ञानप्रकाश विवेक ने अपनी कहानियों में अपने समय और समाज की स्थितियों और संवेदनाओं को रूपायित करने की ईमानदार कोशिश की है। लेखक की ये कहानियां अनुभूत यथार्थ पर आधारित हैं। ये अपने परिवेश के सरोकारों से संयुक्त, बौद्धिक अतिवाद से बचकर सर्वसाधारण कथा यात्री की समझ की सीमा मे प्रवाहित होती हैं। गतिशीलता समाज का नियम भी है और जरूरत भी। महानगर बोध और कस्बाई बोध की परिक्रमा करती कहानियां जमीनी यथार्थ का पुनर्सृजन है। इस यथार्थ को लेखक ने अपनी जीवन दृष्टि के

अनुरूप पुनर्सृजित किया है। इनमें जीवन की त्रासद स्थितियों और गतियों को सशक्त रूप में अभिव्यक्ति मिली है।

आज तकनीकी विकास के साथ जीवनशैली ही नहीं सोच और चरित्र की दिशा मे भी परिवर्तन लक्षित किया जा रहा है। भौतिक विकास के साथ मानवीय संवेदनाओं और मूल्यों के ह्रास की ये कहानियां पाठक को भीतर तक विचलित करती हैं। ज्ञानप्रकाश की कहानियों के मूल में मानवीय संवेदना का पक्ष अत्यंत प्रबल है। कहानियों के केंद्र मे मानवीय चरित्र हैं—सर्वाधिक है मां, और हैं—रफूगर, थॉमस, झूमरी। कहानियों के सामान्य चरित्र भी संघर्षरत हैं और अपनी अस्मिता और जिजीविषा से अपनी उपस्थिति दर्ज कराते हैं। रफूगर जो सुईधागे के साथ फटे कपड़ों पर कलात्मक छेड़छाड़ और लकडी के लट्ठे पर कुल्हाड़े से प्रहार दोनों काम अत्यंत ईमानदारी से करता है, क्योंकि मूल मुद्दा है गरीबी के खिलाफ जंग। दूसरा मुद्दा अपनत्व का है जो महानगर में खो गया है और कस्बे से भी खोता जा रहा है। *'ग्लेशियर'* के थॉमस का व्यक्तित्व खंड खंड होकर टूटता जाता है। गलत लोगों के बीच सही आदमी कितना अकेला और असहाय हो जाता है, इसकी त्रासद तस्वीर है थॉमस का चरित्र। *'गरीब औरत'* कहानी में मेहनतकश और आत्मसम्मानी मजदूर औरत मां की ममता का सौदा नहीं करती बल्कि संपन्न दंपति की संपन्नता की धूल झाड़ देती है। भीड़ के रेले में अपने चौथे बेटे की तलाश करती झुमरी भी मा है जिसकी आंखों में दर्द का धुआं है, जो सुलगती हुई आंखों से टपकता है।

उसकी जमीन की कहानियों के केद्र मे है महानगर और उसकी संवेदना के विविध विद्रूप। महानगर शीर्षक से ही दो कहानिया हैं। पूरा संग्रह ही महानगर का कोलाज जैसा लगता है। यहां के चेहरे लिपे-पुते, सिंथेटिक, भव्य चेहरे है। वे खालीपन से भरे हुए लेकिन मानवीयता से शून्य हैं। यहां सड़क पर हंसना और रोना दोनो मना है। यहां जिंदगी पोलियोग्रस्त लड़की की तरह थम गई है, जिसे उम्रभर लालबत्ती के सामने पड़े रहना है। किसी के दर्द का फोटो बना देना महानगर की कलाबाजी है। यहां सारी यातनाएं स्त्री के हिस्से में ही लिखी होती हैं। तमाम तरह की पीड़ाएं भोगना और अतीत का हिस्सा हो जाना ही नारी नियति है। महानगर के अस्पताल पीड़ा से मुक्ति के केंद्र होने चाहिए लेकिन यहा तो रोगी के तड़पने और चीखने के अधिकार छीन लिए गए हैं। संवेदना घायल और मूक दर्शक बनकर खड़ी रहती है। यहां दर्द को च्यूइंगम की तरह चबाया जाता है। बाद में एक महंगे ऑडिटोरियम में उस लेखक पर गोष्ठी होती है। महानगर ने खूबसूरत इमारतें बनवाई हैं, घर नहीं। यहा बेटों के पास आलीशान कोठियां हैं और उनका अपना बाप बेघर है।

इन महानगरीय संवेदनाओं की परिधि पर जो कहानिया हैं, उनमें *'इक्कीसवीं सदी के लोग'* भी हैं। यह मानव प्रकृति और नियति पर बढ़ते वैज्ञानिक प्रभाव और भौतिकता के दबाव तथा उसके विचार पक्ष को सांकेतिक रूप में अभिव्यक्ति देने वाली, फैंटेसी का

आभास देने वाली कथा है। इसका विचार पक्ष प्रखर है जहां हवा-पानी ही नहीं अपितु संबंधों का प्रदूषण फैलता जा रहा है। यहां संवेनाओं की तितलियों की नस्ल खत्म हो गई है। वातानुकूलित हॉल में बैठकर प्रदूषण के खिलाफ लड़ाई लड़ना जैसी विसंगतियां हैं। इक्कीसवीं सदी का जीवन ही नहीं सपने भी कंप्यूटरीकृत होंगे, जहां भावनाएं 'फीड' की जाएंगी। यहां भावनाएं रिश्तों को बधाई पत्रों में बदलती हैं। महानगर के प्रदूषित जीवन पर लिखी गई यह कहानी संवेदना और शिल्प की दृष्टि से व्यंग्य से आच्छादित उपदेश गाथा जैसी लगती है। *'मारूति वन थाउजंड और मैं'* की बुनावट भी व्यंग्य और कथा के ताने बाने से बुनी व्यंग्यकथा लगती है। यही विसंगति गरीबदास उर्फ जी.डी. के चरित्र की है। *'सीढ़ी मत छोड़ना'* हास्य के भीतर से झांकती करूण चरित्र-कथा है।

इसी संग्रह की एक कहानी *'युद्धरत'* देश की सीमा पार कर विदेश में पैसा कमाने जाने वाले युवक की कथा है। दूसरे देश में पैसा कमाने की हवस से जाने में अस्मिता की मृत्यु निश्चित है। वहां मुद्राराक्षस के लिए आत्मा से लड़ता इंडियन है, तिरस्कृत होता इंडियन, अपने मुंह पर थुकवाता इंडियन है। *'ब्लडी इंडियन'* गाली युवक की चेतना को मथती है। तिरस्कार का यह सात्विक रूप कितना मांसाहारी है। सभ्यता के पीछे दहशत के बुलबुले है। मुद्राराक्षस ने जिंदा रहने की शर्तें बदल दी हैं, इयत्ता की सारी परिभाषाएं बदल दी हैं। यहां की उपभोक्ता संस्कृति के कारण धन से संपन्न देश रिश्तों से कंगाल हो चुका है। यहां संबंधों को कंज्यूम किया जाता है। भावुकता कंप्यूटर पर आंकी जाती है।

वस्तुतः *'उसकी जमीन'* की महानगर केंद्रित कहानियां संवेदनशून्यता की घातक परिणति के प्रति आगाह करती हैं। संवेदनशून्यता विरूद्ध संघर्ष लेखक की आधुनिक सोच की देन है। संवेदना और सोच का सुंदर समन्वय इन कहानियों की श्रेष्ठता की कसौटी है। कथागत सहजता और कलागत सरलता *'उसकी जमीन'* की कहानियों का मुख्य आकर्षण है।

□

उसकी जमीन / लेखक : ज्ञान प्रकाश विवेक / प्रकाशक : अयन प्रकाशन महरौली, दिल्ली / संस्करण : 1993, मूल्य 50 रु.

देश की भावात्मक एकता का महायज्ञ

सुनील पांडेय

पिछले दिनों राजधानी मे मैसूर हिंदी प्रचार परिषद् के स्वर्ण जयन्ती अवसर पर संस्था के महापोषक डॉ. रत्नाकर पाण्डेय के निर्देशन मे दो दिवसीय समारोह का आयोजन हुआ। यह एक विशाल आयोजन था जिसमें हिंदी से जुड़े विषयों पर सार्थक बातचीत हुई। देश-विदेश से आए विद्वानों ने अपने प्रभावशाली विचार रखे। प्रस्तुत है इस समारोह की विस्तृत रिपोर्ट।

28-29 अक्टूबर, 1995 को विज्ञान भवन मे खामोशी के साथ इतिहास का पन्ना लिखा जा रहा था। इन दिनों देश की राजधानी मे भारतीय गणराज्य के राष्ट्रपति, गृहमंत्री, अनेक मुख्यमंत्रियों, राज्यपाल, राजदूत, गण्यमान्य सांसदों, हिंदी विद्वानों, पत्रकारों और समाजसेवियों की उपस्थिति में दक्षिण भारत के सैकड़ों प्रतिनिधि हिंदी को न सिर्फ राष्ट्रभाषा बल्कि विश्व भाषा का दर्जा दिलाने का संकल्प ले रहे थे। यह अवसर था *'मैसूर हिंदी प्रचार परिषद'* के स्वर्ण जयंती समारोह का। देशभक्त राजीव गांधी की स्मृति को समर्पित यह समारोह अपनी भावना और अभिव्यक्ति की दृष्टि से राष्ट्रीय एकता का पर्व बन गया।

सन् 1943 में द. कृ. भारद्वाज नामक एक देशभक्त व समर्पित व्यक्तित्व की एकनिष्ठा व अध्यवसाय के परिणामस्वरूप बंगलूर में *"मैसूर हिंदी प्रचार परिषद"* का जन्म हुआ था। यह वह समय था जब महात्मा गांधी देश भर मे स्वतंत्रता की अलख जगा रहे थे। हर महान राष्ट्रनायक की भांति गांधी जी को भी यह पता था कि भारत की समस्या सिर्फ विदेशी दासता तक सीमित नहीं है। बल्कि अनेक धर्मों, जातियों, क्षेत्रों और भाषाओं मे बटा यह देश तब तक संप्रभु और अजेय नहीं बन सकता जब तक देश को भावात्मक और सांस्कृतिक धरातल पर एकसूत्र में नहीं बांध दिया जाता है। अंग्रेजी के वर्चस्व को वे मानसिक दासता

की सबसे मजबूत जंजीर मानते थे। सारे भारत को एकसूत्र में पिरोने वाली सम्पर्क भाषा के महत्व को वे बारंबार रेखांकित करते थे और इस दृष्टि से हिंदी के महत्व को वे समझते थे। इसीलिए उन्होंने दक्षिण में हिंदी के महत्व को समझाने का प्रयास किया। उनके प्रयासों की प्रेरणा से अनेक व्यक्तित्वों और संस्थाओं का अंकुरण हुआ। इसी तरह का एक छोटा सा अंकुर बंगलूर में मैसूर हिंदी प्रचार परिषद् के रूप में फूटा और आज यह पचास वर्ष का एक विस्तृत, परिपक्व वृक्ष के रूप में सामने है।

परिषद् के पिछले अधिवेश में यह तय किया गया था कि परिषद् अपना स्वर्ण जयंती समारोह दिल्ली में मनायेगी और इस संपूर्ण आयोजन का दायित्व परिषद् ने पूर्व सांसद डॉ. रत्नाकर पाण्डेय पर डाल दिया गया था। डॉ. रत्नाकर पाण्डेय को परिषद् ने अपना *'महापोषक'* (संरक्षक) चुना है। हमारे वर्तमान प्रधानमंत्री श्री पी.वी. नरसिंह राव इस संस्था के अध्यक्ष रह चुके हैं। परिषद् ने इसी संकल्प के तहत यह निर्णय लिया कि 28-29 अक्टूबर को दिल्ली के विज्ञान भवन में दो दिवसीय स्वर्ण जयन्ती समारोह मनाया जाएगा। डॉ. रत्नाकर पाण्डेय के अनथक प्रयासों से यह आयोजन धीरे-धीरे हिंदी प्रेमियों का यज्ञ बनता गया। लगभग तीन सौ गण्यमान्य नागरिकों की एक आयोजन समिति का गठन किया गया। विभिन्न कार्यों के निष्पादन के लिए पंद्रह समितियों का गठन किया गया। इन समितियों में केंद्रीय मंत्री, सांसद, पूर्व सांसद, पूर्व राजदूत, प्रसिद्ध पत्रकार, अफसर, हिंदी के विद्वान और कर्मठ कार्यकर्त्ता शामिल थे।

इन तमाम समितियों की कर्मठता का परिणाम 28 अक्टूबर को प्रातः 11 बजे विज्ञान भवन में देखने को तब मिला जब भारत के राष्ट्रपति डॉ. शंकर दयाल शर्मा ने खचाखच भरे विज्ञान भवन मे तालियों की गड़गड़ाहट के बीच दीप प्रज्वलित करके स्वर्ण जयंती समारोह का विधिवत उद्घाटन किया। समारोह के प्रति लोगों के उत्साह का अदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि इस अवसर पर विज्ञान भवन की सीटे भर चुकी थीं और लोग खड़े थे। वातावरण को स्वयं गृहमंत्री शंकर राव चव्हाण ने इन शब्दों मे व्यक्त किया 'मैं जब राष्ट्रपति महोदय के साथ कल इस समारोह में आया और देश के विज्ञान भवन का यह मुख्य सभागार खचाखच भरा है तो मुझे सुखद आश्चर्य हुआ।' उद्घाटन के अवसर पर राष्ट्रपति महोदय ने राजीव गांधी को मरणोपरांत *हिंदी सेवा शिखर सम्मान' से अलंकृत किया। उन्होंने गृह मंत्री शंकर राव चव्हाण को भी हिंदी गौरव सम्मान* प्रदान किया। स्वयं राष्ट्रपति महोदय को *हिंदी शिरोमणि* सम्मान से सम्मानित किया गया। गृह मंत्री ने यह सम्मान राष्ट्रपति को अर्पित किया।

राष्ट्रपति ने अपने भाषण मे राजीव गांधी को हिंदी सेवा शिखर सम्मान को उचित बताते हुए कहा कि वे अपने नाना पं. जवाहर लाल नेहरू की तरह हिंदी को देश को जोड़ने का माध्यम मानते थे। वे इसके विकास के प्रति सदैव चिंतित रहते थे। डॉ. शर्मा ने हिंदी

के विकास में अहिंदी भाषा-भाषियों के योगदान की चर्चा करते हुए 'कर्नाटक हिंदी' का उल्लेख किया जिसका केंद्र गुलबर्गा था। उन्होंने कहा कि वहां बन्दे नवाज अली जैसे दक्खिनी हिंदी के प्रसिद्ध कवि हुए। डॉ. शर्मा ने क्षेत्रीय भाषा-भाषियों के मन से यह भय निकालने की जरूरत बतायी कि हिंदी के विकास से उनके अस्तित्व को खतरा होगा। उन्होंने कहा कि उल्टे इससे उनका मार्ग प्रशस्त होगा। लेकिन साथ ही उन्होंने आगाह किया कि हिंदी को भी राष्ट्रभाषा होने का दंभ नहीं पालना है।

अपने स्वागत भाषण में डॉ. रत्नाकर पाण्डेय ने स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान हिंदी की उल्लेखनीय भूमिका का जिक्र करते हुए कहा कि सन् 1942 के दौर मे गांधी जी के आह्वान पर मंगलूर, धारवाड़, बेलगांव, कुर्ग और बीजापुर जिलों मे भी स्वाधीनता का अद्भुत संग्राम छिड़ गया। इसी के साथ-साथ भाषा और संस्कृति के प्रचार-प्रसार का आंदोलन भी जड़ पकड़ता गया। डॉ. पाण्डेय ने भाषा के प्रश्न को देश की अस्मिता और सम्मान से जुड़ा बताते हुए हिंदी सहित सभी भारतीय भाषाओं के उन्नयन के लिए व्यावहारिक कदम उठाने पर बल देते हुए इस दो दिवसीय समारोह के लिए मानो एजेंडा तय कर दिया। उन्होंने यह भी मांग की कि अंग्रेजी की अनिवार्यता हटाकर हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं को परीक्षा का माध्यम बनाया जाए। उन्होंने याद दिलाया कि पूर्व प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने इस पहलू की संवेदनशीलता को ध्यान मे रखते हुए तत्कालीन गृह राज्य मंत्री श्री पी. चिदम्बरम को इस दिशा में कार्रवाई करने का निर्देश दिया था। लेकिन वर्तमान सरकार राजीव गांधी के इस आदेश को पूरा करने के लिए कोई कदम नही उठा रही है। इस अवसर पर राष्ट्रपति ने यह आश्वासन दिया कि वे संघ लोक सेवा आयोग तथा अन्य सरकारी क्षेत्रों में भारतीय भाषाओं को लागू करने के संबंध मे शीघ्र उपयुक्त कार्यवाही करेंगे। गृहमंत्री ने अपने भाषण में प्रतिनिधियों का आह्वान किया कि वे भी मैसूर हिंदी प्रचार परिषद के कार्यों से प्रेरणा लेकर हिंदी सेवा का व्रत लें।

इस उद्घाटन सत्र का समापन सांसद वी. नारायणस्वामी द्वारा दिए गए धन्यवाद भाषण से हुआ। समारोह की भावना के अनुरूप श्री नारायणस्वामी ने भी अपना भाषण हिंदी में देकर सबका हृदय जीत लिया। उद्घाटन सत्र में लगभग डेढ़ हजार प्रतिनिधि मौजूद थे और इनमें तकरीबन आधे अहिंदी भाषी राज्यों मे आए हुए थे। इस अवसर पर उत्तर प्रदेश के राज्यपाल मोती लाल वोरा, मध्य प्रदेश के मुख्यमंत्री श्री दिग्विजय सिंह, असम के मुख्यमंत्री श्री हितेश्वर सैकिया, रक्षा राज्य मंत्री श्री सुरेश पचौरी, उत्तर प्रदेश के पूर्व राज्यपाल श्री सत्यनारायण रेड्डी, पोलैंड के राजदूत, अनेक सांसद व गण्यमान्य व्यक्ति उपस्थित थे। समारोह के अगले सत्रों मे हरियाणा के मुख्यमंत्री श्री भजन लाल तथा उड़ीसा के मुख्यमंत्री श्री जे.बी. पटनायक भी शामिल हुए। इस तरह समारोह का उद्घाटन सत्र समाप्त हो गया। परंतु उद्घाटन सत्र में ही रस्म अदायगी से हटकर समारोह का एजेंडा सामने रख दिया गया

था और इसके बाद के सत्रों में गंभीर बहस और विचार-विमर्श इस मूल एजेंडा पर ही केंद्रित रहा।

इसी दिन अपराह्न के भोजन के बाद मुख्य सभागार में 'राष्ट्रभाषा और राजभाषा सम्मेलन' और कक्ष संख्या चार में 'पचास वर्षों की हिंदी पत्रकारिता' पर दो संगोष्ठियों का आयोजन हुआ। विभिन्न विषयों पर आयोजित होने वाली छः संगोष्ठियों का ये एक हिस्सा थीं। राष्ट्रभाषा और राजभाषा सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए असम के मुख्यमंत्री श्री हितेश्वर सैकिया ने कहा कि हिंदी राजभाषा ही नहीं बल्कि राष्ट्रभाषा है। उन्होंने कहा कि हिंदी ही एकमात्र ऐसी भाषा है जो संपर्क भाषा की भूमिका अदा कर सकती है। इस संगोष्ठी की अध्यक्षता उत्तर प्रदेश के पूर्व राज्यपाल श्री वी. सत्यनारायण रेड्डी कर रहे थे और पूर्व मानव संसाधन मंत्री श्री अर्जुन सिंह इसके मुख्य अतिथि थे। तीन घंटे से भी ज्यादा समय तक चली इस संगोष्ठी में डॉ. विजयेंद्र स्नातक जैसे विद्वानों ने राजभाषा और राष्ट्रभाषा के विकास की समस्याओं पर गहराई से प्रकाश डाला। अनेक विद्वानों ने हिंदी को संपर्क भाषा के रूप में विकसित करने के लिए आवश्यक कदमों का भी उल्लेख किया। जहां अर्जुन सिंह ने प्रस्तावित अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय का सवाल उठाया वहीं रक्षा राज्य मंत्री श्री सुरेश पचौरी ने हिंदी को देश की पहचान बताया। सम्मेलन में यह भी मांग उठी कि संसदीय राजभाषा समिति की जिन सिफारिशों पर राष्ट्रपति का आदेश हो चुका है उनका अनुपालन हो। यह मुद्दा भी उठा कि 31 दिसम्बर, 1988 को समिति की तीसरी रिपोर्ट की दो सिफारिशों पर अभी तक आदेश नहीं हुए है, ये है :

—संघ लोक सेवा आयोग सहित सभी भर्ती परीक्षाओं में अंग्रेजी प्रश्न पत्र की अनिवार्यता समाप्त की जाए।

—जिन नौ भर्ती परीक्षाओं के लिए संघ लोक सेवा आयोग ने अभी तक हिंदी का विकल्प नहीं दिया है, वहां ऐसा प्रबंध हो।

दूसरी संगोष्ठी हिंदी पत्रकारिता के पचास वर्ष पर हुई। बंबई जनसत्ता के स्थानीय संपादक राहुल देव ने इस संगोष्ठी की अध्यक्षता की और नवभारत टाइम्स के वरिष्ठ संपादक श्री अच्युता नंद मिश्र ने इसका संयोजन किया। गोष्ठी का प्रारंभ करते हुए दैनिक हिंदुस्तान के पत्रकार श्री सुनील पाण्डेय ने संगोष्ठी की मूल अवधारणा पर प्रकाश डाला। इसके बाद अनेक वक्ताओं ने पिछले पचास वर्षों में हिंदी पत्रकारिता में आए उतार-चढ़ावों का विस्तारपूर्वक जिक्र किया। जहां एक ओर सभी वक्ता इस बात पर सहमत थे कि आजादी के पहले ही पत्रकारिता मिशनरी थी और अब व्यावसायिकता का बोलबोला है वहीं व्यावसायिकता के औचित्य पर गंभीर मतभेद भी उभर कर आए। जब एकाध वक्ताओं ने अंग्रेजी के सामने हिंदी पत्रकारिता को हेय बताया तो राहुल देव और जनसत्ता के रविन्द्र त्रिपाठी ने इसका तीव्र विरोध किया। जहां एक ओर रमेश ऋषिकल्प ने पत्रकारिता के मूल्यों के क्षरण का सवाल

उठाया वहीं अच्युतानंद मिश्र ने पत्रकारिता पर बढ़ते दबाव और संपादक नामक संस्था के अस्तित्व पर खतरे का सवाल सामने रखा। धीरे-धीरे बहस *''अतीत के गौरव बनाम वर्तमान की चुनौतियों''* पर केंद्रित होती चली गयी। अपने अध्यक्षीय भाषण में राहुल देव ने कहा कि अतीत का स्मरण करने से कोई लाभ नहीं होगा। प्रश्न है वर्तमान की चुनौतियों का। साथ ही उन्होंने यह स्वीकार करने से भी इंकार कर दिया कि पत्रकारिता मे सिर्फ क्षरण हुआ है। बाद में अपने धन्यवाद भाषण में सुनील पाण्डेय ने राहुल देव की वर्तमान की चुनौतियों को रेखांकित करने की समस्या का उल्लेख करते हुए इसे भविष्य की चर्चा का एजेंडा बताया।

समारोह के दूसरे दिन प्रातःकालीन सत्र में *'अंतर्राष्ट्रीय हिंदी सम्मेलन'* और *'हिंदी के विकास में हिंदीतर प्रदेशों का योगदान'* विषय पर संगोष्ठियां प्रारंभ हुईं। मुख्य सभागार में आयोजित *'अंतर्राष्ट्रीय हिंदी सम्मेलन'* का उद्घाटन विदेश राज्य मंत्री श्री सलमान खुर्शीद ने किया। सम्मेलन की अध्यक्षता पोलैंड के राजदूत मारिया सित्कोफ ब्रिस्की ने की। ब्रिस्की संस्कृत एवं हिंदी के ही नहीं बल्कि भारतीय दर्शन, संस्कृति, इतिहास और साहित्य के गंभीर अध्येता हैं। इस संगोष्ठी का संयोजन भारत में सूरीनाम के राजदूत श्री बच्चू प्रसाद सिंह ने किया। संगोष्ठी का उद्घाटन करते हुए विदेश राज्य मंत्री श्री सलमान खुर्शीद ने कहा कि मैसूर हिंदी प्रचार परिषद् अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हिंदी के लिए जो भी प्रस्ताव प्रेषित करेगी उस पर विदेश मंत्रालय कार्रवाई करने में गर्व का अनुभव करेगा। उन्होंने कहा कि विदेश मत्रालय यह प्रयास भी करेगा कि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर होने वाले हिंदी सम्मेलनों को जनता से जोडा जाए। श्री बच्चू प्रसाद सिंह ने अपने भाषण में इस तथ्य को चिह्नित किया कि विश्व मे हिंदी का प्रचार-प्रसार अन्य भाषाओं की तरह साम्राज्यवादी विस्तार से नही जुडा रहा है। इस सम्मेलन का आधार हिमांशु जोशी ने प्रस्तुत किया।

इसी दिन हिंदी के विकास में हिंदी सेवियों के योगदान विषय पर संगोष्ठी हुई। इस संगोष्ठी की अध्यक्षता गुजरात कांग्रेस के अध्यक्ष श्री प्रबोध रावल ने की। भारतीय ज्ञानपीठ के पूर्व निदेशक श्री पांडुरंग राव ने अपने संक्षिप्त भाषण से श्रोताओं को मुग्ध कर दिया। श्री राव ने कहा कि हिंदी के विकास के लिए हिंदी भाषियों को भी अन्य भारतीय भाषाएं सीखने में उसी प्रकार तत्परता दिखानी चाहिए जैसी कि दक्षिण भाषाएं जानने वाले हिंदी के प्रति दिखा रहे हैं। उन्होंने कहा कि अंग्रेजी को हाशिये पर लाने के लिए सभी भारतीय भाषाओं को समान महत्व देना होगा।

इस प्रकार यह दो दिवसीय समारोह विभिन्न प्रकार के विचार-विनिमय का मच बन गया। विभिन्न सूत्रों और संगोष्ठियों से विचार और सुझाव सामने आये और उनके आधार पर प्रस्ताव निरूपण समिति ने बारह सूत्री प्रस्ताव पत्र तैयार किए। इसमें पहला प्रस्ताव है—संघ लोक सेवा आयोग की सभी परीक्षाओं में अंग्रेजी की अनिवार्यता समाप्त की जाए। इसके अलावा संयुक्त राष्ट्रसंघ में हिंदी को मान्यता दिलाने, वर्धा में शीघ्र अंतर्राष्ट्रीय

विश्वविद्यालय की स्थापना करने जैसी अनेक महत्वपूर्ण बातें इसमें शामिल हैं। इन प्रस्तावो मे एक अहम् प्रस्ताव यह भी है कि हिंदी तथा अन्य सभी भारतीय भाषाओं के समाचार पत्रों को मौलिक तथा विस्तृत समाचार सूचना उपलब्ध हो सके, इसलिए एक स्वतंत्र हिंदी न्यूज एजेंसी की स्थापना की जाए।

समारोह के अवसर पर एक राजभाषा प्रदर्शनी का भी आयोजन किया गया। इसमें सरकारी क्षेत्र में हिंदी के प्रयोग और विकास के प्रयासों को दर्शाया गया। इस प्रदर्शनी में नेशनल बुक ट्रस्ट, कद्रीय हिंदी निदेशालय, राजभाषा विभाग, प्रकाशन विभाग, रेल मंत्रालय तथा सेल जैसे पद्रह संगठनों ने भाग लिया। इसके अलावा कंप्यूटर प्रदर्शनी ने लोगों का विशेष ध्यान आकर्षित किया। इसमे वर्ड प्रोसेसर और द्विभाषी पैकेज आदि शामिल थे।

इसका समापन भारत के गृहमंत्री श्री शंकरराव चव्हाण ने किया और कार्यक्रम की अध्यक्षता केंद्रीय मानव संसाधन विकास मंत्री श्री माधव राव सिंधिया ने की। इस अवसर पर उड़ीसा के मुख्यमंत्री श्री जानकी बल्लभ पटनायक भी उपस्थित थे। गृहमंत्री ने हिंदी सेवा के लिए 51 विद्वानों, पत्रकारों और हिंदी सेवियों को ग्यारह हजार रुपए की नकद धनराशि, शाल तथा स्मृति-चिह्न से सम्मानित किया। समारोह के अवसर पर एक वृहद् स्मारिका का भी प्रकाशन किया गया है।

समारोह 28 अक्टूबर, 1995 की शाम को प्रगति मैदान के लाल चौक थियेटर में उस समय चरमोत्कर्ष पर पहुंच गया जब बहुरंगी प्रकाश व्यवस्था के बीच सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रारंभ हुआ। डॉ रत्नाकर पाण्डेय ने दीप प्रज्वलित कर इस सांस्कृतिक कार्यक्रम का शुभारंभ किया। इसके बाद हरियाणा, मध्य प्रदेश, असम, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश और पंजाब के लोक कलाकारो ने अपनी कृतियों और रंगमंचीय अभिव्यक्तियों से मानो समय को थाम लिया। यह सांस्कृतिक कार्यक्रम लगातार चार घंटे चलता रहा तथा इन कलाकारों ने उपस्थित जनसमुदाय का मन मोह लिया। इस अवसर पर डॉ. पाण्डेय ने विभिन्न राज्यों से आए कलाकारो तथा पंडवानी की सुप्रसिद्ध कलाकार तीजन बाई को सम्मानित किया।

समारोह की समाप्ति पर 29 अक्टूबर, 1995 को विज्ञान भवन में कवि सम्मेलन का आयोजन किया गया। देश के विभिन्न राज्यों से आए हुए लगभग 50 ख्यातिप्राप्त कवियों ने कवि सम्मेलन में भाग लिया जिनमें श्री बेकल उत्साही, श्री कन्हैया लाल नन्दन, श्री ओम प्रकाश आदित्य, श्री श्रीकृष्ण तिवारी, डॉ. शेरगंज गर्ग, श्री रमानाथ अवस्थी, श्री मधुर शास्त्री, श्री पाल सिंह क्षेम, श्री सुरेंद्र शर्मा, श्री अशोक चक्रधर, श्री चकाचौंध ज्ञानपुरी, श्री सूंड फैजाबादी, श्री सांड बनारसी, श्री टी.जी. प्रभाशंकर प्रेमी आदि मुख्य रूप से उपस्थित थे। कवि सम्मेलन रात्रि 12 बजे तक चला तथा अन्त में डॉ. रत्नाकर पाण्डेय के धन्यवाद प्रस्ताव के साथ ही सपूर्ण समारोह संपन्न हुआ। □

श्रद्धा-सुमन

गगनाञ्चल परिवार

स्मृति-शेष

केन्द्रीय मंत्री एवं प्रमुख समाज सेवी

दिनेश सिंह

कर्मठ राजनेता, सांसद, साहित्यकार एवं हिंदी सेवी

शंकर दयाल सिंह

छायावादोत्तर गीतधारा के प्रमुख हस्ताक्षर

रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'

हिंदी व्यंग्य के आधार स्तम्भ

हरिशंकर परसाई

एवं

प्रसिद्ध पत्रकार

लक्ष्मीशंकर व्यास

को श्रद्धापूर्वक स्मरण कर

अपनी श्रद्धांजलि प्रस्तुत करता है।